साधनमाला—अष्टम वर्ष—मणि १

शाक्त-दर्शन

लेखक

पण्डित श्री कालीचरण जी पन्त

* * * *

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

* * *

प्रथम संस्करण] संवत् २०२५ [मूल्य ३), सजिल्द ३॥)

अनुक्रमणिका

हिन्दी में शाक्त-साहित्य का अभाव रहा है। उसमें भी 'शाक्त-दर्शन' पर तो किसी ने लेखनी उठाने का साहस ही नहीं किया है। कुछ विद्वानों ने प्रयास भी किया, तो शाक्त-साधना का क्रियात्मक अनुभव न होने से वैसी सफलता प्राप्त नहीं कर सके। उनकी कृतियों से सच्चे जिज्ञासुओं को सन्तोष लाभ नहीं हो सका।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक पण्डित श्री कालीचरण जी पन्त ने शाक्त-साहित्य का अध्ययन तो सतत रूप से किया ही है, बाल्यावस्था से ही आपने शाक्त-साधना का निरन्तर अभ्यास भी किया है। यदि यह कहा जाय कि शाक्तधर्म के क्रियासिद्ध और अनुभवी विद्वानों में आपका स्थान अपने ढँग का अनूठा ही रहा है, तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी। आपकी कृति शाक्त दर्शन पर एक ठोस शोध-प्रबन्ध के समान है, जिसका महत्व उसके एक-एक शब्द और एक-एक वाक्य से प्रतिपादित होता है।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित 'सर्व-दर्शन-सम्मेलन' में आप सादर आमंत्रित किए गए थे। उसी के लिए आपने अल्प काल में यह प्रबन्ध प्रस्तुत किया था। इसे पढ़ने से इसके द्वारा प्रतिपादित विषय की विलक्षणता का अनुभव विज्ञ पाठकों को स्वयं ही होगा, यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि काशी के उक्त सर्व 'दर्शन-सम्मेलन' में शाक्त-दर्शन पर प्रवचन करनेवाले एकमात्र वक्ता पूज्य पन्त जी ही थे। आपके सिद्धान्त-विवेचन ने उक्त सम्मेलन में भाग लेनेवाले अन्यान्य दर्शन-शास्त्रियों को मुग्ध कर लिया था। इसमें सन्देह नहीं कि इस निबन्ध के महत्व को हृदयङ्गम कर शाक्तधर्म, उसकी साधना और उसके सिद्धान्तों के जो जिज्ञासु इस अभूतपूर्व कृति को ध्यान से पढ़ेंगे, उनको अत्यधिक ज्ञान-लाभ होगा। हिंदी में पहली बार शाक्तधर्म के एक अनुभवी मर्मज्ञ द्वारा शाक्त-दर्शन पर इस प्रकार स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है।

श्रद्धेय पन्त जी ने यह कृति प्रस्तुत कर आध्यात्मिक जगत् का जो हित किया है, उसे भविष्य ही बताएगा। हमें आशा है कि शाक्तदर्शन की जो रूपरेखा इस पुस्तक के द्वारा निर्दिष्ट हुई है, उसके सम्बंध में अधिकारी विद्वानों द्वारा अधिकाधिक प्रकाश डालने का प्रयास किया जायगा। इसी में इस प्रकाशन की सार्थकता है। विश्वास है कि जिज्ञासु जन इसका अध्ययन कर लाभान्वित होंगे।

अन्त में हम अनुभवी विद्वान् लेखक के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि आपने हमें इस अनूठी रचना के प्रकाशन का अवसर देने की कृपा की।

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६ —भद्रशील शर्मा, बी० ए०

२८-८-६८ सम्पादक 'चण्डी'

विषय-प्रवेश

शक्ति-सम्बन्धी विशाल साहित्य है। वैदिक रूप में ऋग्वेद में सरस्वती रहस्योपनिषद्, सौभाग्य लक्ष्म्युपनिषद्, अथर्ववेद में देव्युपनिषद् आदि आदि हैं। केनोपनिषद् में उमा आविर्भूत हो इन्द्र को ब्रह्मरहस्य का उपदेश करती हैं। अथर्ववेद के देव्युपनिषद्, सुन्दरी तापिनी उपनिषद् द्वारा गायत्री का चौथा पाद 'त्रिपुरा' कहा जाता है। वृहद्वृचोपनिषद्, सुन्दरी तापिनी-उपनिषद्, भावनोपनिषद्, अरुणोपनिषद् (तैत्तरीय आरण्यक) आदि हैं। पुराणों में ब्रह्मांड पुराण, कूर्मपुराण, मार्कण्डेय पुराण, कालिकापुराण आदि में भी शक्तिवाद प्रचुर है।

महाकाल संहिता के मतानुसार शाक्तागम-तन्त्रों की संख्या ६४, उपतन्त्रों की संख्या ३२१, संहिता ३०, चूडामणि १००, अर्णव ६, डामर चतुष्टय तथा अष्टक यामल हैं। सूक्त २, पुराण ६, उपवेद १५, कक्ष पुटी ३, विमर्शिणी ३, कल्पाष्टक ८, कल्पलता २, चिन्तामणि ३ तथा सूक्त-रूप में अगस्त्यसूत्र, परशुराम कल्पसूत्र, दुर्वासा सूत्र, दक्षसंहिता, प्रत्यभिज्ञा शक्ति-सूत्र एवं श्रीविद्यारत्न सूत्र हैं।

वेद-उपनिषदादि भाषा की दुरूहता से अगम्य होते गये। यद्यपि अति प्राचीन समय से ही तन्त्रों को प्रकाश करने का उद्योग होता रहा, यथा—शंकराचार्य के गुरु श्री गौडपादाचार्य

द्वारा श्रीविद्या सूत्र रचा गया। स्वामी शंकरारण्य का उस पर भाष्य बना।

आचार्यपाद शंकर के चारों मठों में श्रीविद्या-यन्त्र प्रतिष्ठित किया गया, नैपाल-स्थित प्रसिद्ध पशुपतिनाथ के शीर्ष में प्रतिदिन श्रीयन्त्र का पूजन हुआ। श्री बद्रीनाथ, जगन्नाथ के महासङ्कल्प ही पूर्णरूपेण प्रकट करते हैं कि वे शाक्त स्थान थे।

पुराण-टीकाकार नीलकण्ठ को 'शक्तितत्त्वविमर्शिणी', सिद्ध-भास्कर राय का 'वरिवस्या रहस्यादि', उमानन्दनाथ का 'नित्योत्सव', श्रीविद्यारण्य स्वामी का 'श्री विद्यार्णव', वाचस्पति मिश्र तथा लक्ष्मीधर (समयी मत) की टीकाएँ क्लिष्ट संस्कृतमयी होने से सर्व-साधारण के लिये बोधगम्य नहीं हैं।

आचार्य अभिनव गुप्त की शिष्य-परम्परा में क्षेमराज ने शिवपुराण, शिववार्तिक सूत्रादि लेकर शाक्तदर्शन प्रणीत किया। विद्वद्वर तर्करत्न भट्टाचार्य ने शक्तिपरक ब्रह्मसूत्र का शक्ति-भाष्य लिखा है।

यद्यपि बंगाल के सिद्ध सर्वानन्द ठाकुर, वामाक्षेपा, श्री रामप्रसाद सेन, श्री कमलाकान्त तथा पूज्य रामकृष्ण परमहंस ने बंगाल तथा भारत को ईसाई धर्म से बचाकर हिन्दू धर्म को सुरक्षित रखा, पर स्पष्ट प्रचार नहीं किया।

महाराजा काश्मीर, बड़ौदा एवं महाराजा दरभङ्गा द्वारा तन्त्र शुद्ध कर संकलित किये गये। दरभङ्गा-महाराज रमेश्वर सिंह के प्रभाव में सर जॉन उडरफ़ ने अनेक तन्त्रों का जीर्णोद्धार किया, पर केवल कुछ संस्कृत-अंग्रेजी ज्ञाताओं के प्रयोजन की ये पुस्तकें रहीं।

श्री रसिकमोहन चट्टोपाध्याय तथा श्री जीवानन्द चक्रवर्ती, स्वामी पूर्णानन्द, सदानन्द आदि ने भी तन्त्र-वाङ्मय के जीर्णोद्धार का प्रयत्न किया। छोटे-छोटे तन्त्र पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र द्वारा छपाये गये।

इधर पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल द्वारा संवत् १९९९ विक्रम में संस्थापित कल्याण मन्दिर, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६ द्वारा अप्राप्य तन्त्रों के पुनः प्रकाशन का स्तुत्य कार्य किया गया है, जो वर्तमान में भी चल रहा है।

संक्षेप में यही तन्त्र के सुलभ करने के प्रयास का इतिहास है।

मानसकार तुलसी यदि संस्कृत में मानस की स्थापना करते, तो अनेक अन्य रामायणों की भाँति वह भी लुप्त हो जाता, पर यवन-शासन में तन्त्ररूपक हिन्दी भाषा में प्रणीत होने से हिन्दी तथा हिन्दू दोनों उन्नति को प्राप्त हुए तथा रामायण का अभूतपूर्व प्रचार हुआ। पर हयशीर्ष अवतार-स्वरूप श्री महामहोपाध्याय गोपीनाथ जी का निरन्तर हिन्दी भाषा में गहन तन्त्र-तत्वों का प्रकाशन इसी प्रकार हिन्दी तथा तन्त्र को अमर बना रहा है। कुलार्णव में लिखा है कि ऐसे आचार्यों के दर्शन दुर्लभ हैं। यथा—

दुर्लभं सर्वलोकेषु कुलाचार्यस्य दर्शनम्।
विपाके नैव प्रभूणां लभ्यते नान्यथा प्रिये॥

शाक्तधर्म के विषय में कुलार्णव में स्पष्ट लिखा है—

न पद्मासन-गतो योगी न नासाग्र-निरीक्षणम्।

कई नवीन अनधिकारी आचार्यों ने तन्त्रशास्त्र में हठयोग, राजयोग आदि का सम्मिश्रण कर दिया। कुण्डलिनी योग

अथवा शक्तियोग मूलतः आगम-सम्पत्ति है। उसको यद्यपि अन्य सम्प्रदायों ने भी आगम से उद्धृत किया, पर इस गोप्य तत्व का समुचित निराकरण सफलतापूर्वक न कर सके। तुलसी के शब्दों में—

'नहिं तव आदि मध्य अवसाना, अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।
भवभव विभव पराभव-कारिणी, विश्वविमोहिनि स्ववस विहारिणी ॥

उपर्युक्त विवरणात्मक त्रिपुर में रहनेवाली त्रिपुरा कारण अथवा तुरीय शरीर के अन्तर की वस्तु को क्या स्थूल शरीर के आलोड़न अथवा सूक्ष्म शरीर के व्यर्थ प्रयासों से उद्बुद्ध किया जा सकता है ? कदापि नहीं। इसके लिये सूत्र में वर्णन है—'गुरुरुपायः।' गुरु-द्वारा सफल शक्तिपात-युक्त दीक्षा, गुरु-आज्ञानुसार पुरश्चरणादिक से अधिकार प्राप्त कर मृदु-कोमलादि आसनों द्वारा श्री बगला सिद्धविद्या से प्राणवायु-शमन, छिन्ना विद्या द्वारा वज्रा नाडी उद्घाटनपूर्वक सुषुम्ना-प्रवेश, श्रीविद्या, द्वितीयादि द्वारा ग्रन्थि-त्रय-भेद तथा चरमगुरु श्री 'विपरीता' आद्या द्वारा ही अमृत प्राप्त कर कैवल्य-प्राप्ति होती है।

तन्त्रों के सभी कार्य मन्त्रों द्वारा ही होते हैं। इनमें अन्य सम्प्रदायों की किसी क्रिया का सम्मिश्रण वर्जित है। कौलोपनिषद् के—१ प्राकट्यं न कुर्यात्, २ कौल-प्रतिष्ठां न कुर्यात्—इन दो सूत्रों के कारण शाक्त-दर्शन पूर्ण प्रकाश में नहीं आ सका।

शाक्त-दर्शन सूक्ष्म प्रकार से मन्त्र के चार महावाक्यों (जिनकी दीक्षा पूर्णाभिषेक के अन्त में दी जाती है—श्रुतेः श्रुतम्) के अन्तर्गर्भित है। आलंकारिक रूप से भूतशुद्धि, सप्तशती,

महाकाल संहिता, शक्ति-सङ्गम, दक्षिणा-सर्वस्व आदि में सृष्टि-क्रम-वर्णन में सभी स्थानों में वे प्रकट रूप से दिए गए हैं। उनके अनुसार तत्व एक ही है और वह श्रीमदाद्या ही वर्णमालात्मक ५१ रूपों में कुलकुण्डलिनी का भिन्न-भिन्न प्रकार का आकार तथा स्थिति होने से ५१ प्रकार के तत्व बनते हैं, जिनके आद्या यन्त्र स्वरूप पञ्चशक्ति त्रिकोणात्मक पञ्च अवस्थाएँ हैं—१ तुरीयातीत, २ तुरीय, ३ कारण, ४ सूक्ष्म तथा ५ स्थूल। आद्या के माया बीज के हकारात्मक शिव ईंधन द्वारा प्रज्वलन अग्नि से माया तत्व की चिर विश्रान्ति होने पर आद्याबीज स्वरूप ज्ञान द्वारा कूर्च बीज युक्त अमृत प्राप्ति ही आद्या के त्रिबीजों का रहस्य है। कथा रूप में वर्णित है—

अमृतत्वा ललाटेऽस्याः शशि-चिह्न-निरूपितम्।

महानिर्वाण तन्त्र

यही अग्नि शुद्ध ज्ञान अमृत है और कुण्डलिनी-रूप ५१ प्रकार से ५१ तत्व बनता है। इसी प्रकार उद्धार क्रम में गुरु भी एक ही हैं, वह हैं श्री आद्या।

यथा—

देव्यन्तेः स्वस्व गुरुवन्तं ज्ञानपूजा परा मता।
आदिनाथात् गुरुज्ञानं स्वगुरुवन्तं महेश्वरी॥

(शक्तिसंगम)

बिम्बरूप मानसिक शिव के विकाशार्थ (मैटर पर स्प्रिट के) पाँच आक्रमण सृष्टिमूलक हैं। प्रथम—तुरीयातीत महाशक्ति का महाकाल-छागात्मक बिम्ब स्वरूप शिव का निर्माण, द्वितीय—शक्ति के तुरीयरूप से परमशिव एवं सदाशिव का उद्भव, तृतीय—सद्विद्या द्वारा सदाशिव की ईश्वर तत्व में परिणति, चतुर्थ-सद्विद्या का मायात्मक हो ईश्वर तत्व का

परमैश्वर्य-हरण-पूर्वक पञ्च-कचुकाभिभूत-पुरुषतत्व में स्थिति-करण, पञ्चम—माया तत्व का प्रकृति रूप धारण कर पुरुष तत्व का जीवस्वरूप में परिणत करना।

इसका आलङ्कारिक दिग्दर्शन देवीभागवत की देवी गीता में कुछ अंशों तक मिलता है। सप्तशती के द्वितीय चरित्र के अन्तर्गत आद्य पाश तथा तृतीय चरित्र की नारायणी स्तुति की चौबीस शक्तियाँ, प्रथम चरित्र की दो आसुरी प्रवृत्तियाँ आदि इसी 'शक्ति दर्शन' की कुछ अंशों में मीमांसा देती हैं। पर पूर्णतया मन्त्रशास्त्र के आदि महावाक्यान्तर्गत तथा महाकाल संहिता इत्यादि ग्रन्थों में ही पूर्ण विवरण है। जैसा कि कहा गया है —

विवेकसम्भवं ज्ञानं शक्ति-ज्ञान-प्रकाशकम्।
लोचन-द्वय-हीनं च प्रज्ञाचक्षुः प्रकाशकम्॥

असीम अखण्ड आदि ज्ञान तत्वत: एक ही है। जैसा कि 'सप्तशती' वर्णन करती है—एकैवाहं जगत् यत्र द्वितीया का ममापरा।' इसी प्रकार आदि ज्ञान एक ही है। इसमें विकास अथवा ह्रास सम्भव नहीं हो सकता। ज्ञान-रूपक-वेद में कहा है—'यथा पूर्वमकल्पयत्'। ज्ञान में नवीनता कोई नहीं ला सकता। आविष्कार, खोज द्वारा नवीनतम ज्ञान को कोई प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। केवल विस्मृत ज्ञान की तप-मननादि द्वारा स्मृति प्रबुद्ध होती है। ज्ञान का स्वरूप नित्य है और वह स्वयं शुद्ध शक्ति-रूप है। यथा—'मेधासि देवि विदिताखिल-शास्त्रसारा' अथवा—'विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः, स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु' अथवा 'चिति-रूपेण या कृत्स्नमे तद् व्याप्य स्थिता जगत्', जिन देवी से चारों वेदों की स्थिति हुई। यथा—

> शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान—
> मुद्गीतरम्य-पद-पाठवतां च साम्नाम्।
> देवी त्रयी भगवती भव भावनाय,
> वार्ता च सर्वजगतां परमार्ति-हन्त्री॥" सप्तशती ४।१०

स्वयं ऋग्वेद वर्णन करते हैं—'अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्मम यो नि रपस्वनतः समुद्रे" मण्डल १०, सूक्त १२५। अर्थात् मैंने

जगत् के आदि पिता—'महाकाल' को उत्पन्न किया और तदुपरि मेरी स्थिति है—यह वर्णन प्रत्यक्ष रूप से श्री महाद्या तथा आदिनाथ महाकाल को इंगित कर रहा है। यथा—'शव-रूप-महाकालहृदयोपरि-संस्थिताम्।

यद्यपि वेद में अनेक प्रकार से शक्ति का वर्णन है। जैसे—देवी सूक्त, रात्रि-सूक्त, सरस्वती-सूक्त आदि तो प्रसिद्ध हैं ही, पर अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के तेरहवें सूक्त में कुण्डलिनी-स्वरूप विद्युत् पर स्तव-स्वरूप मन्त्र दिये गये हैं। यथा—

'नमस्ते प्रवतो न पाद्यतस्तवः समूहसि।
मृडयानस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥'

अर्थात् हे देवि, प्रकृष्ट ज्ञानवालों को तू पतन की ओर नहीं ले जाती है, आदि।

इसी प्रकार यजुर्वेद रुद्र द्वारा शिवा की प्रार्थना करता है—'या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी' यजु० १६-२।

वृहत्-धर्मपुराण घोषित करता है कि 'वास्तव में आदिनाथ ही ने पहिले तन्त्र, पीछे वेद रचे।' यथा—'आदावागमकर्तृत्वे पश्चाद्वेद नियोजितः। अथर्ववेद इसी का समर्थन करते हुए कहता है—

'कालाद्दचः समभवन् यजुः कालादजायत्' अथर्व० १६।५४

काल ने ऋग्वेद बनाया, उसी काल ने यजुर्वेद भी रचा। यजुर्वेद में कहा है—'वही सर्वहुत्' अर्थात् काल ने ऋग्-यजु-अथर्व-साम बनाये। यथा—'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि-जज्ञिरे, छन्दाँसि जज्ञिरे, तस्माद्यजु तस्मादजायत।' यजु० ३१-७।

पुनश्च—'कालः प्रजाः असृजत्' अथर्व० १९-६ अर्थात् महाकाल ने ही सृष्टि की, जिसको अथर्ववेद निम्न ऋचा द्वारा फिर स्पष्ट करते हैं—'काले भूः दिवमजतयन् काल इमा पृथ्वीरुत काले भूतं च भव्यं च चाषितं च विनिर्वृतम्' ।

जिसे काल कहा जाता है, वह आगम में आदि शक्ति प्रतिबिम्ब महाकाल है। साधारण प्रकार से सूर्य-प्रतिबिम्ब (आदर्श-द्वारा) प्रकाश तथा उष्णता-रूपक है। चित्-चैतन्य आदिशक्ति का प्रतिबिम्बात्मक काल्पनिक शिवरूपं महाकाल की शक्ति भी कल्पनातीत है। आगमानुसार महाकाल का ध्यान निम्न प्रकार है—

'कोटि-कालानलाभासं'

अर्थात् आद्य अग्नि का प्रतिबिम्ब भी तद्रूप अग्निमय है।

विश्व के यावन्मात्र पदार्थ उसी से उद्भूत हैं। इसीलिये कहा है—'कालः प्रजाः असृजत्, कालः पचति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः, काले लोकः प्रतिष्ठितः, कालो हि जगदाधारः' ।

इस काल पर अधिष्ठान करनेवाली आद्या हैं, जिनका निरूपण वेद करते हैं—

'तमासीत्तमसा गुह्यमग्रे ।'

इसी स्वरूप का दर्शन सप्तशती के प्रथम चरित्र में वर्णित है, जो ब्रह्मा को प्राप्त हुआ—'एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र-वेधसा' ।

इसी का समर्थन छान्दोग्य इस प्रकार करता है—'श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये' छान्दोग्य ८।१३।१। इस आदितत्व में श्यामवर्ण की भाव । श्वेताश्वतरोपनिषद्-कथित निम्न मन्त्र की स्मृति देता है—

'तेनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः'
श्वेता० ६-२

कठोपनिषद् भी वर्णन करता है—
'तन्दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं' कठो० २-१२ ।

तन्त्रशास्त्र इसी का स्पष्टीकरण इस भाँति करते हैं—

'महा-संहार-समये कालः सर्वं ग्रसिष्यति ।
कलनात्सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः ॥
महाकालस्य कलनात्त्वमाद्या कालिका परा ।
कालत्यादादि भूतत्वादाद्या कालीति गीयते ॥'

महानिर्वाणतन्त्र ।

ब्रह्मा द्वारा प्रश्न किये जाने पर श्री आद्या सृष्ट्यादि तत्व का निरूपण करती हैं—

'मम पाद - रजो नीत्वा उपादानात्मकं शिवम् ।
सृष्ट्यादीन्कुरुत प्राज्ञामेन सिद्धिर्भविष्यति ।'

दक्षिणा-सर्वस्व ।

जैसा कि आचार्यपाद सौन्दर्यलहरी में दिखाते हैं—

'शिवः शक्त्या युक्तः यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ।'

पुनश्च—

'तनीयांसु पांशुं तव चरणपङ्केरुह - भवं,
विरञ्चिः सञ्चिन्वन् विरचयति लोकं स सकलम् ।'

सौन्दर्यलहरी ।

इसी प्रकार 'महतोभूतस्य इति महाकालः' अर्थात् महाकाल द्वारा ही वेदों की रचना हुई । यथा—

'अस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो, यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः' बृहदारण्यकोपनिषद् । महाकाल के श्वास-प्रश्वास से वेदों की रचना हुई ।

इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् में 'परास्य शक्तिर्बहुधा च गीयते'। इस पद से काल-शक्ति की नाना प्रकार की अभिव्यञ्जना की गई है। उस शक्ति के विषय में, जिसके निकट काल की तुच्छता तथा निष्क्रियता प्रतिपादन करने के लिये प्रेत-रूप में नहीं (क्योंकि प्रेत में भी किञ्चित् शक्ति होती है) अपितु शव-रूप में स्वय महाकाल उसके चरणतल में शयित हो रहे हैं। उस परमा शक्ति के विषय में उपोद्घात-स्वरूप किंचित् वर्णन कर द्रष्टव्य विषय की ओर प्रवेश करते हैं।

श्री कालिका का ध्यान ही विषय को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त होगा—

महाप्रलय - नामा तु सकृदेव प्रवर्तते।
महाप्रलयके जाते ततः शून्यं भविष्यति॥
ब्रह्मरूपा परानन्दा केवला तारिणी परा।
सर्वं तस्यां तु संलीनं तद्रूपं सर्वमेव तु॥
एवं देवि महाशून्यं महादक्षिण कालिका।
व्याप्य तिष्टति देवेशि शून्यं कृष्ण-स्वरूपकं॥
काली श्मशान-सम्भूतः काल्या नेत्रे नियोजितः।
संहार-समये प्राप्ते काल्या सम्प्रेरितः शिवे॥
ब्रह्माण्ड भस्मसात्कृत्वा ज्वाला-माला समाकुलः।
अनादि सृष्टि-रूपाया महामायाद्य-चण्डिका।
तदा वह्नि महेशानि स्वनेत्रे स्थापित सदा॥

(इति शक्तिसंगमे)

उक्त ध्यान में आदि महामाया महाशून्य में शवरूप महाकाल में केवल शून्यरूप तैजस् है। मुख्य अर्थ में मूल तन्त्र अर्थात् वह्नि ही उनका तीसरा नेत्र सृष्टि-स्थिति-संहार रूप है। इस नेत्र के विषय में विशेष प्रकार से शास्त्र वर्णन करते हैं—

'तस्मिन् हुतं च दत्तं च सर्वं भस्म भविष्यति ।'

(शक्तिसंगम)

गीता में भी भगवान् ने ज्ञान को अग्निरूप ही कहा है—

'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् क्रियतेऽर्जुन ।'

एवं आदि-अग्नि महाकाल ऋषि-प्रणीत ऋग्वेद भी ज्ञानाग्नि-स्वरूपा आद्या के रूपक अग्नि शब्द से ही प्रारम्भ किया गया है। यथा—अग्निमीळे पुरोहितम् ......।' ऐसा ही कथन तन्त्र में दक्षिण काली विषयक भी है—'ज्वलनार्थ समायोगात् सर्व-तेजोमयी शुभा।' इसी की आवृत्ति कठोपनिषद् में है—'ज्योतिरिवाधूमकः, (कठो० २—१—१३)

पुनश्च—'यच्छुभ्र-ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यात्मविदो विदुः ।'

(मुण्डक २-६)

वेदों में मन्त्र, उनकी भाषा अनादि प्रतीत होती है। उनमें किञ्चिन्मात्र भी सुधार अथवा नवीनीकरण सम्भव नहीं। कहा गया है कि ब्रह्मा ने सहस्र वर्ष तपस्या द्वारा वेदार्थ प्राप्त किया। ऋषियों ने भी उच्च भूमिकाओं के स्तर पर ही इसको प्राप्त किया। अपौरुषेय वेद वह्नि-स्वरूप कालिका से उद्भूत हैं। महाकाल-रूप मानसिक शिव, जो आद्या वह्नि बिम्ब-स्वरूप हैं—उन्हीं से इनका प्रणयन हुआ। इसी कारण वेद के आदि ऋषि महाकाल अथवा अग्नि हैं। सुदीर्घ कालानन्तर वेद विभाजन पर यजुर्वेदादि के ऋषि वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा कहे गये। चारों वेद एक स्वर से मूलतत्व विद्याराज्ञी-रूपी वह्नि (कालिका) तथा तज्जनित यज्ञादिकों का ही मुक्तकण्ठ से स्तवन करते हैं। वेद का अर्थ व्याकरण द्वारा नहीं किन्तु आगमानुसार यथोक्त भूमिका पर आरोहण करके मन्त्रदेव-दर्शन द्वारा ही सम्भव है। वेद मन्त्रात्मक हैं, छन्द

उनके स्तर (भूमिका) कम्प, स्पन्दन से मन्त्र के अर्थ का संकेत देते हैं। वास्तव में मन्त्र का अर्थ देवता ही है। उस देवता के दर्शन से ही उस मन्त्र का ज्ञान सम्भव है। नवीनता, खोज, आविष्कार एवं अनुसन्धान के लिये अर्थ-निरूपण में कोई स्थान नहीं। तादात्म्य-प्राप्ति द्वारा ही यथोक्त भूमिका में मन्त्र का अर्थ प्राप्त हो सकता है। मन्त्र वर्णों के योग से बना है। वर्ण ही समस्त सृष्टि के मूल में हैं, सृष्टि के अन्त में वे छिन्नशीर्ष (शक्तिरहित) हो श्री कालिका की आभामय मुण्डमाला के रूप में शोभित होते हैं। यथा—

'पञ्चाशद्वर्ण-मुण्डाली गलद्रुधिर-चर्चिताम्।

(मुण्डमाला तन्त्र)

आगमशास्त्र में निष्णात-बुद्धि महर्षि पतञ्जलि ने वर्ण-माला में ब्रह्म-ज्योति का ज्वलन्त रूप साक्षात् किया था, यथा—

'सोऽयं वाक् समाम्नायो वर्ण-समाम्नायः पुष्पितः फलितश्च तारकवत् प्रतिमण्डितो विदितव्यो ब्रह्मराशिः।'

(महाभाष्य)

वर्ण-समूह से कुण्डलिनी बनी है और विभिन्न वलय धारणपूर्वक ५१ तत्व बनते हैं, जिनसे समष्टि-व्यष्टि-रूप समग्र सृष्टि-व्यापार चला। यथा—

'एकैव कुण्डलिनी देवि स्वेच्छया गुणिता भवेत्'। (महाकाल संहिता) यही कुण्डलिनी समस्त स्थावर-जंगमादि में व्याप्त है। यथा—

'इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्ति-देव्यै नमो नमः॥'

(सप्तशती)

तन्त्र-वर्णित कुण्डलिनी और षट्चक्र की वेद, उपनिषदों ने भी विस्तृत व्याख्या की है। यथा--

'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती एकपदी,द्विपदी सा चतुष्पदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।' (ऋग्वेद संहिता १-१६४-४६)

अर्थात् षट्चक्र-स्थित सलिलादि पञ्चमहाभूतों को लय करती हुई कुण्डलिनी-रूपिणी गौरी वाक् सहस्र अक्षरवाले सहस्रार-पद्म में सहस्राक्षरी हो जाती है। तन्त्र का कथन है कि सहस्रार-चक्र पचास वर्णमाला के विंश-गुणित अर्थात् एक सहस्रार दल से युक्त है। एवं षट्चक्र पचास दलयुक्त हैं। किसी भी दल पर अन्तर्चेतना द्वारा उद्दीपित होने से उस वर्णरूप देवता तथा तज्जनित सकल विभवैश्वर्य की प्राप्ति होती है। चक्रस्थ सात केन्द्रों को जोड़ कर यही १०५७ भूमिकाएं अनन्तानन्त ज्ञान की भण्डार हैं। इन पर की स्थिति अर्थात् भूमिकाओं की प्राप्ति ही भिन्न-भिन्न ज्ञाननिधि के लिये वांछनीय है।

एक भूमिका से दूसरी भूमिका में आरोहण करने पर किञ्चिन्मात्र मूर्छितावस्था आवश्यक है, क्योंकि सन्धि-विषयक चेतना केवल शिवादि दिव्य देहों में ही सम्भव है। अन्नादि से दूषित देह अल्पकालीन मृत्यु के अनन्तर ही नवीन ऊर्ध्व-स्तरारोहण कर सकती है। उन स्तरों के लिये ज्ञानेन्द्रियाँ पृथक् हैं, तथा उन ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियाँ भी पृथक् हैं। उच्च उच्च स्तरों पर वे अधिकाधिक उद्दीप्त हो जाती हैं। जिस प्रकार गौरीशङ्कर शिखर पर आसीन व्यक्ति के लिये क्षितिज पर्याप्त विस्तृत रहता है, यदि उसे प्रबल दूरदर्शक यन्त्र सुलभ हो, तो उसका क्षितिज आसमुद्रान्त हो सकता है।

ज्ञान के क्षेत्र में स्थिति अर्थात् भूमिका तथा उस स्तर का उद्दीपित शक्ति—ये दो बातें अपना महत्व पृथक्-पृथक् रखती हैं। संसार में मनुष्य की सीमित कर्मेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान का जिन्होंने विरोध करके वास्तविक तथ्यों को संसार के सम्मुख रख कर यह कहा कि 'जो दृश्यमान है, वही सत्य नहीं, सत्य कुछ और है' ऐसी निदर्शना करनेवाले उन गैलिलियो, सुकरात आदि की निर्मम हत्या कर दी गई। इन विभिन्न भूमिकाओं का रहस्य संसार को साधारण कर्मक्षेत्र से विचलित कर देता है। वे इसकी आधारशिला की कल्पना भी नहीं कर पाते। इसीलिये सभी शास्त्रों (गीता आदि) में गुह्यतम आदि शब्द योजित हुये हैं।

वेद, वेदान्त-दर्शन सूत्रात्मक रूप में रहस्याम्नाय में परिवर्तित कर दिये गये। अज्ञ पुरुष पौरुष को अपना स्वत्व समझता है। अतः देव-कल्पना पुल्लिङ्ग में है॥ यद्यपि पौरुष = सत्ता = शक्ति है। रुग्णावस्था द्वारा निर्बलत्व उसे सुझा देता है कि वह न तो नपुंसक लिंग ब्रह्महीन हो गया, न पुंस्त्व रूप ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रहीन हो गया। वरन् वह स्त्रीलिंग-वाच्य शक्तिहीन हो गया। सर्वान्त सत्तारूप 'शक्ति' शब्द स्त्रीलिङ्ग-वाच्य है। परन्तु वास्तव में 'शक्ति' शब्द नाम-लिङ्गानुशासन से परे है। आगम 'शक्ति' का निरूपण इस प्रकार करते हैं—

स्त्री-रूपां चिन्तयेद्देवीं पुंरूपां वा विचिन्तयेत्।
अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्द-लक्षणम्॥

अपरा विद्या अथवा वेदादिकों का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि वेद, उपनिषद् अधिकार-क्रम से पराविद्या अर्थात् आगम की पृष्ठभूमि हैं। वे सोपान-क्रम से तन्त्र का अधिकारी बनाते हैं। षट्चक्र-क्रम में मूलाधार अन्तिम

भूमिका है। तन्त्र के सप्ताचारों में भी सर्वप्रथम मूलाधार चक्र में चतुर्द्वार-युक्त भूपुर वेद-विषयक तथा अन्तिम चक्र सहस्रार कौल भूमिका है। यथा—

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिप्रज्ञा।

अथवा

सप्त इमे लोकाः येषु चरन्ति प्राणाः गुहाशयाः निहिताः सप्त सप्त।

(मुण्डकोपनिषद् २-१-८)

अधिकार की समीक्षा के सोपानक्रम के अनुशीलन के लिये अपरा विद्या वेदादि का संक्षिप्त अवलोकन अप्रासङ्गिक न होगा। वेदों से ब्राह्मण, ब्राह्मणों के भाग, आरण्यक और सार ज्ञान उपनिषद् कहलाता है। आर्य षड्-दर्शन वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व-मीमांसा एवं उत्तर-मीमांसा उपनिषद्-ज्ञान को पुनः वेद-रूप प्रमाण की कसौटी पर कसकर बनाये गये। ऋषियों ने उन्हें अधिकारी का ध्यान रखते हुए विभिन्न भूमिकाओं में स्थित हो आध्यात्मिक क्रमिक विकास के रूप में प्रकट किया।

धर्म में उदार भारत की भूमि में देहात्मवाद-रूप नास्तिक, चार्वाक दर्शन भी प्रचलित हुए, पर उनका प्रभाव बहुत ही सामान्य रहा।

षड्-दर्शन सोपान-रूप में स्थित हैं। वैशेषिक दर्शन का कथन है कि धर्म अभ्युदय एवं निश्रेयस को प्राप्त करानेवाला है। ईश्वर तथा जीव नित्य पदार्थ हैं। अदृश्य अणु-परमाणु का वर्णन सप्तशती की स्मृति कराता है—

यच्च किञ्चिद् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया॥

इस प्रकार देहात्मवाद से यह सर्वप्रथम अन्तर्वृत्ति का प्रथम सोपान है।

दूसरे सोपान में न्याय दर्शन वृथा विवाद-खण्डन-पूर्वक युक्ति-युक्त तर्क से विचारधारा को आत्मतत्व की ओर मोड़कर सांख्यतत्वों के निर्माण की योजना स्थिर करता है।

तीसरा सोपान सांख्य प्रकृति के पुरुप पर आक्रमण से चौबीस प्रकार के तत्वों के उद्भव का परिचय देकर तदुद्धारार्थ अन्तर्वृत्ति की तैयारी करने का अर्थात् योगदर्शन की नींव प्रस्तुत करता है।

'सप्तशती' तीसरे चरित्र में इन चौबीस तत्वों को चौबीस शक्तिरूपों में छठे अध्याय में वर्णन करती है। ये अष्टार और भूपुर के मध्य की चौबीस दलों की शक्तियाँ हैं।

योगदर्शन पञ्चकंचुकों को साधारण परिवर्तित अभाव-रूपक नाम देकर अन्तर्वृत्ति की ओर अष्टांग योग द्वारा कर्म-काण्ड तथा ज्ञानकाण्ड-रूपक पूर्वमीमांसा एवं उत्तर मीमांसा सोपानों की ओर एकाग्र-सम्पादन कर बढ़ाता है।

पूर्व-मीमांसा वैशेषिक तथा न्याय द्वारा प्रबल तर्क से अन्तर्दृष्टि एवं सांख्य द्वारा पच्चीस तत्वों का विश्लेपणात्मक प्रकृति-ज्ञान तथा योग द्वारा प्रशासित अन्तर्वृत्ति से कर्मकाण्ड-रूपक उपासना में आरूढ़ कर ज्ञान-रूप वेदान्तदर्शन ब्रह्मसूत्र या उत्तर मीमांसा का जिज्ञासु बनाती है। ज्ञान की रटन बिना कर्म के कार्यान्वित नहीं हो सकती। अतः पूर्व-मीमांसा कर्म-काण्ड-प्रधान है।

उत्तर मीमांसा, वेदान्त दर्शन में ज्ञान एक ही है, किन्तु अपने-अपने स्तर के अधिकारानुसार 'प्रभु-मूरति तिन देखी तैसी' विभिन्न आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र-दर्पण से भिन्नार्थों द्वारा अपने-अपने सम्प्रदायों के दर्शन प्रतिष्ठित किये। ब्रह्मसूत्र में दर्पणवत् अपने ही आकृति चित्र बनाए। पर शंकर अद्वैत-वाद में ईश्वरी कृपा अर्थात् शक्तिपात को अपेक्षित माना गया।

मन्त्र, उपासना आदि वस्तुतः आगम का विषय है। इसलिये गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव, शाक्त आदि दर्शन आगम से सम्बन्धित हैं। वेदार्थ में भिन्नार्थ वैदिक उपासना में परिवर्तन भयंकर परिणामी हैं। वेदों के अर्थ अथवा भाष्य-रूपक अठारह पुराण हैं, जिनमें से अधिकांश यथा ब्रह्माण्ड, कूर्म आदि वैदिक यज्ञादिक प्रणाली तथा शक्ति की स्तुतियों से युक्त हैं। वे नित्य निरन्तर कथानक द्वारा देहात्म-अभ्यास को हटाने का प्रयत्न करते हैं तथा यह अवगत कराते हैं कि जगत् का बाह्य रूप वास्तविक रूप नहीं है, बाह्य ज्ञान अज्ञान है, जड़ प्रकृति दिक्कालावच्छिन्न प्रतीत होती है और आत्मा अशाश्वत।

ज्ञान-सीमित इन्द्रियों से युक्त सामान्य बुद्धिवाले वास्तविक ज्ञान से अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। अतः आगम के लिये निगमादि के अनुसार तपस्या-युक्त अनुशीलन-मनन द्वारा प्राप्त ज्ञान का अधिकार अत्यन्त आवश्यक है।

आगम के अनुसार शक्ति-दर्शन की तीन आधार-शिलाएँ अथवा प्रस्थान-त्रयी हैं। यथा—

(१) आदि महावाक्य, जो संख्या में चार हैं, वेद आदि के महावाक्यों से पृथक् हैं। इनका उपदेश केवल महापूर्णाभिषेक के अवसर पर मिलता है, और ये अन्तर-पूजित महावाक्य गुह्यतम तथा आगम की समस्त क्रिया-कलापादि पर पूर्ण प्रकाश डालकर साधक को शंका-रहित बना देते हैं।

(२) द्वितीय समष्टिरूप विश्व का, जो अनन्त-ब्रह्माण्डात्मक है, व्यष्टि-रूप पिण्ड से तादात्म्य करनेवाले शाक्त-उपनिषद्, जिनकी मुख्य संख्या पन्द्रह है।

(३) तृतीय शक्तिसूत्र, जिनकी परिगणित संख्या पाँच है।

यहाँ यह विषय विचारणीय है कि अद्वैत शाक्तमार्ग में शब्द-विन्यास निम्न प्रकार का है—उदाहरणार्थ एक ही शब्द जैसे 'सरस्वती' भिन्नार्थ-बोधक है, पर मूलतः आदि विद्या का बोधक है। जैसे अनिरुद्ध सरस्वती = आद्या, नील सरस्वती = द्वितीया, सम्पत्सरस्वती = श्री विद्या। इसी प्रकार 'चण्डिका' शब्द भी व्यवहृत है। जैसे चण्डिका = आद्या, उग्रचण्डिका = द्वितीया, प्रचण्ड-चण्डिका = छिन्ना। सप्तशती के प्रथम-चरितान्त में 'तामसी' शब्द ऋग्वेदोक्त रात्रिसूक्त का आदिनम रूप आद्या है। द्वितीय चरितान्त में 'परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या' रूप—'तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप' का संकेत आद्या-परक ही है। तृतीय चरित्र के अन्त में 'तथेत्युक्त्वा भगवती चण्डिका चण्ड-विक्रमा' इस मन्त्र में भी स्पष्ट आद्या का संकेत है। सप्तशती में निर्विवाद रूप से केवल आद्या ही देवता-रूप में प्रतिपादित हैं। वास्तव में 'दुर्गा' शब्द भी आद्या का ही पर्यायवाची शब्द है। अपने इष्ट को प्रकट करने के संकट से बचने को सभी 'दुर्गा'-शब्द व्यवहृत करते हैं। तन्त्र में वर्णन है कि आद्या ने ही शुम्भादि दैत्यों का नाश किया। यथा—

पुनर्वै दैत्यनाशार्थं रूपं सुन्दरमेव तु।
सम्बिभ्रती महादेवी शुम्भाद्याऽखिलनाशिनी॥

(शक्तिसंगम)

शक्ति-दर्शन के अनुसार तत्व केवल एक ही है। वह सर्व आदि-तत्व तुरीयातीत आद्या दक्षिणा काली हैं, जिनके

त्रिबीज-स्वरूप मन्त्रानुसार ही उनका रूप है। प्रथम मायाबीज के हकारात्मक शिव का रेफ-स्वरूप चिदग्नि में प्रज्वलित हो प्रकृति-मायादि तत्वों की चिर विश्रान्ति होती है। इसीलिये आद्या आदि अग्नि-रूपा हैं। द्वितीय बीज वास्तविक ज्ञान-मूलक अनिरुद्ध सरस्वती बीज है। यथा—

'जननि जड़चेताः अपि कविः' तथा च 'जननि स जड़ो वाग्पति-समः'।

(कर्पूरादि स्तव)

तृतीय कूर्च बीज चिर-कैवल्यानन्द-रूप अमृत है। अतः आदितत्व आद्या परमकुण्डलिनी-रूपा आदि वह्नि ज्ञानामृत-स्वरूप हैं। सृष्टि का वर्णन करते हुए महर्षि वेदव्यास ने 'देवी-भागवत' में आलङ्कारिक कथानक की रचना की है—

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किञ्चित् नगाधिप।
तदात्मरूपं चित्सम्वित् परब्रह्मैक-नामकम्॥

(देवी गीता)

हिमालय से वर्णन करने में जगदम्बा आदि तत्त्व के विषय में कहती हैं—मेरे आत्मस्वरूप को विभिन्न नामों से पुकारते हैं। जैसे चित्-संवित्-परब्रह्म आदि। पुनश्च—

स्वाशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता।
स्वाधारावरणात्तस्याः दोषत्वं च समागतम्॥

(देवी गीता)

आधार पर अधिष्ठान करना ही सर्वप्रथम विकारोत्पत्ति का कारण हुआ। तुरीयावस्था में यह दोष ही तुरीय अवस्था का आदि कारण हुआ, जिसके कारण शक्ति बीजरूप को

प्राप्त हो गई। ये बीज ही सृष्टि-रचना में पञ्चशक्ति में १ महा-शक्ति, २ शक्ति, ३ शुद्ध विद्या, ४ माया और ५ प्रकृति द्वारा आक्रमणों से अधिष्ठान-मूल शिव को जीव-स्थिति में परिणत करते हैं। ५१ मातृका-तत्त्वों द्वारा यह सर्व-समष्टि तथा व्यष्टि की रचना है। इसका विवरण प्रथम महावाक्य में है। महावाक्यों का निम्न विवरण है—

यत्र तद्भावना देवि, महावाक्यं क्रियात्मकम्।
योगीनां तन्त्र षडविंशः वैदिकानां च विंशति॥
वेदान्तिनां द्वादशं च चत्वार्येव च मन्त्रिणाम्।

(पराराव)

सर्वप्रथम तत्व का निर्देश तन्त्र निम्न प्रकार से देते हैं—

१—'अः' (काली)

शक्तेः प्राधान्यं काल्या च सर्वदा परिकीर्तितम्।

(शक्तिसंगम)

अर्थात् आद्या में केवल मात्र शुद्ध महाशक्ति-तत्व है। यन्त्र भी पञ्चशक्ति त्रिकोणात्मक है। शिवतत्व की योजना से शुद्ध शक्तितत्व नहीं रहता। इसलिये उनका ध्यान भी (प्रथमबीजा-नुसार) निम्न प्रकार है—

सप्त-प्रेतैक-पर्यङ्क राजिते शव-हृच्छिवा।
शव-रूप महाकाल हृदयाम्भोज-वासिनी॥
कोटि-कालानल-ज्वाला सेवनीया विधानतः।

(शक्तिसंगम)

इस ध्यान में स्पष्ट है कि सर्वहुत् अग्नि-स्वरूप महाकाल पर अग्निरूप से ही उनका अधिष्ठान है। इसलिये समस्त निगम अग्नि तथा यज्ञ का ही समर्थन करते हैं।

पुनश्च—

महाघोर-कालानल-ज्वालज्वाला हितात्यक्त-ज्वाला-महाट्टाट्टहासा।

(सुधाधारा स्तव)

बाडवानल तन्त्र का वचन है—

एकैवाद्या जगत्सूतिः सच्चिदानन्द-विग्रहा।
तत्तद्विभूति-भेदेन भिन्नानेकत्वमागताः॥

अन्यच्च—

शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।
शक्तिहीनोऽपि यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः॥

अर्थात् अशक्त ब्रह्म वा अन्य सम्बोधन सृष्ट्यादि कार्य में निरर्थक हैं। तन्त्र वर्णन करते हैं कि उपर्युक्त प्रलयाग्नि-स्वरूप आद्या का स्थान शून्यतम श्मशान है। यथा—

ब्रह्माण्ड-रूपा या शक्तिः परब्रह्म-स्वरूपिणी।
चिच्छक्तिरिति विज्ञाता शून्यं तस्यास्तु कोणकम्॥

(शक्तिसंगम)

यह सर्व-चैतन्य-शक्ति वह्निरूप में प्रतिष्ठित है, जैसा कि 'दक्षिणा सर्वस्व' का कथन है—

संहाररूपिणी काली जगन्मोहन-कारिणी।
वह्निरूपा महामाया सत्यं सत्यं न संशयः॥

श्यामा रहस्य के द्वितीय परिच्छेद में वर्णन है कि द्वितीय बीज पूर्ण ज्ञान स्वरूप है। यथा—

अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशी पूजा नहि सारस्वत-प्रदा॥

अन्यच्च—

तेषां गद्यानि पद्यानि च मुख-कुहरादुल्लसन्त्येव वाचः।
स्वच्छन्दं ध्वान्त-धाराधर रुचि-रुचिरे सर्वसिद्धिं गतानां॥

(कर्पूरादि स्तोत्र)

पुनश्च—

मूकोऽपि कवितामेति....।

(सिद्धेश्वर तन्त्र)

तृतीय बीज कैवल्यानन्द-स्वरूप अमृत है, जिसके लिये तन्त्र वर्णन करते हैं—

अमृतत्व ललाटेऽस्याः शशि-चिह्न-निरूपितम् ।

(महानिर्वाण तन्त्र)

पुनश्च—

विशुद्धा परा चिन्मयी स्वप्रकाशामृतानन्द-रूपा जगद्व्यापिका च ।

(सुधाधारा)

मुण्डकोपनिषद् भी लिखता है—

तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं विभाति ।

(२—२—७)

पुनश्च—छान्दोग्योपनिषद् स्तोत्रों के वर्णन-प्रसङ्ग में कूर्च बीज का अर्थ 'सबमें व्याप्त वर्णनातीत अमृत, अतः परब्रह्म' करता है। (छान्दो० १—१३ एक से तीन तक)

तैत्तिरीयोपनिषद् 'सु-वर्ण, ज्योतीः य एवं वेद।'

इसी कारण तन्त्र इस महाविद्या के विषय में कहता है—

अनया सदृशी विद्या नास्ति ब्रह्माण्ड-गोलके ।
विद्याराज्ञी गुह्यकाली भिद्यते न कदाचन ॥

पुनश्च—

न गुरोः सदृशं वस्तु न देवः शंकरोपमः ।
न च कौलात्परो योगी न विद्या कालिका समा ॥

(कुल-रत्नावली)

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त त्रिबीजों के अर्थानुसार आदिशक्ति महामाया का रूप केवल वह्न्यात्मक ज्ञानामृत

है। अथर्ववेद भी उन्नीसवें काण्ड के चौथे सूक्त में अग्नि-स्वरूपा आकूति शक्ति का वर्णन चार ऋचाओं में देते हैं। इन चार मन्त्रों के 'अथर्वाङ्गिरस' ऋषि हैं और चारों मन्त्रों में काली, श्रीविद्या, नील सरस्वती-स्वरूप वाग्देवताओं का वर्णन करते हैं। विस्तार-भय से एक ही ऋचा पर्याप्त होगी। यथा—

'यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः' आदि।

आशा है कि विद्वज्जन इन चार ऋचाओं का अनुशीलन करेंगे।

पुनश्च—यजुर्वेद की काठक संहिता में परतत्व को 'अम्बानामासि' कहा गया है। शुक्ल यजुर्वेद भी 'वाजसनेयी संहिता' में इसी का समर्थन निम्न प्रकार से करते हैं। यथा—

अम्बे अम्बालिका अम्बिके०।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है 'अम्बाय स्वाहा'। तन्त्रों में उद्धार-क्रम सर्वत्र साथ ही चलता है, यथा—'विपस्य विपमौपधम्'। सर्वप्रथम कौन कर्म थे, जिनके अनुसार जीव को जन्म लेकर नाना व्याधियाँ सहन करनी पड़ीं। इसका उत्तर कहीं प्राप्त नहीं। निष्कर्ष-स्वरूप स्वयं परतत्व ही स्वबिम्ब के विकास से सृष्टि रचते हैं, तथा जब बिम्ब की अपनी ही स्वतन्त्र स्थिति नहीं है, तो बिम्ब द्वारा सृष्टि-क्रम भी काल्पनिक है। अतः मूलशक्ति पर विकार-दोष प्रयुक्त नहीं होता। किन्तु उपर्युक्त उक्ति के अनुसार जो तत्व सृष्टि अर्थात् बन्धन के मूल में हैं, वे ही मोक्ष अर्थात् उद्धार-कारक हैं। इसी प्रकार आद्यतत्व भी ज्ञानाग्नि-अमृत-स्वरूप होने से सर्वप्रथम गुरुरूप में प्रतिष्ठित हैं। यथा—

देव्युवाच—

आदौ सर्वत्र देवेशः मन्त्रदः प्रथमो गुरुः।
परात्परः गुरुस्त्वं हि परमेष्ठिरहं ततः॥
सर्व-तन्त्रेषु विद्यासु स्वयं प्रकृति-रूपिणी।

(भाव चूड़ामणि)

पुनश्च—

देव्यन्ते स्व-स्वगुर्वन्तं ज्ञानपूजा प्रकीर्तिता।

ज्ञान-रूपी अग्नि में समस्त कल्मष शुद्ध हो अमृतपद की प्राप्ति अथवा कैवल्य-प्राप्ति कराना ही उनका गुरु-रूप है। यथा—

कालीरूपं महेशानि साक्षात्कैवल्य-दायकम्।

(स्वतन्त्र तन्त्र)

पिच्छला तन्त्र में भी कहा है कि—

चतुर्वर्गं लभेन्मन्त्री हेलयापि च सा स्मृता।

कुलचूडामणि में भी इसी का समर्थन है। यथा—

सर्वसिद्धि-प्रदा देवि हेलयापि च चिन्तिता।
ततः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते॥

अन्यच्च—

अज्ञानात् ज्ञानतो वापि सलीलं च सहेलया।
स्मृतापि सिद्धिदा काली सकृदेव महेश्वरी॥
चतुर्युगानां राज्ञी वै कालिका परिकीर्तिता।
वरदानेषु च रता तेनेयं दक्षिणा स्मृता॥
सेयं दक्षिणा काली तु सिद्धिभूमिरितीरिता।

(शक्तिसंगम)

'महाकाल संहिता' आद्या के वर्णन में उनका ध्यान निराकार तथा महाशून्य में स्थिति निरूपित करता है। यथा—

महानिर्गुणरूपा च वाचातीता परा कला ।
महाज्वालानलैर्दीप्तं मुण्ड-विन्दु-विभूषितम् ॥
एवं देवि महाशून्यं महा-दक्षिण-कालिका ।
व्याप्य तिष्ठति देवेशि शून्यं ब्रह्म-स्वरूपकम् ॥

महानिर्वाण तन्त्र इस शून्य का विवरण देते हुए वर्णन करता है—

महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका परा ।
अरूपायाः कालिकायाः कालमातुर्महाद्युतेः ॥

सृष्टेच्छा विकाररूप प्रतिबिम्बात्मक शिव महाकाल को भी अपने तेजस् में भस्मसात् करती है। 'काली'-शब्द का अर्थ ही इसका बोधक है। यथा—

'ककारात्'* ब्रह्मरूपत्वं आकारात् व्यापकत्वेन सर्वव्यापक ईरितः ।
लकारं पृथ्वीवाचकं । सृष्ट्यर्थे हकारार्धकला देवि ईकारः परिकीर्तितः ॥

अर्थात् प्रथम आदि तत्व से अन्तिम वसुधा तत्व पर्यन्त सर्वव्यापकत्व तथा सर्वसृष्टिरूप 'परापराणां परमा' शक्ति ही काली है। कामधेनु तन्त्र में वर्णित है—

मातृका परमेशानि काली साक्षान्न संशयः ।
केवलं कालिकाबीजं वर्णैः वर्णैः पृथक् पृथक् ॥

इस आदि आनन्दतत्व से, जो स्वरों के अन्तिम वर्ण 'अः' से सूचित होता है, अकारात्मक आदिनाथ महाकाल की उत्पत्ति हुई।

---

* ककारः सर्ववर्णानां मूलप्रकृतिरेव च । (कामधेनु तन्त्र)
क = महाकाली (तन्त्राभिधान), आ = सर्वव्यापकत्व, ई = 'ईकारः केवलो देवि महाकामकलात्मकः।' ल = लकारः चंचला-पाङ्गि कुण्डली-त्रय-संयुतः । (कामधेनु तन्त्रे)

एतस्मिन्नेव काले तु स्वबिम्बं पश्यति शिवा।
तद्बिम्बं तु भवेन्माया तत्र मानसिकं शिवम्॥

(महाकाल संहिता)

पुनश्च—

सृष्टरारम्भ-काले तु दृष्टा छाया तया यया।
इच्छाशक्तिस्तु सा जाता तया कालो विनिर्मितः॥

(ककारादि)

पुनश्च—

काली-माया-समुद्भूतः काली मानसिकः शिवः।

(शक्तिसंगम)

अन्यच्च—

कालीमाया तु या शक्तिर्बिम्बाद्य-प्रतिबिम्बका।
काली-व्यापक-सच्छाया महाकालः प्रकीर्तितः॥

(महाकाल संहिता)

२—'अ' (महाकाल)

अकारः सर्ववर्णाग्रयः प्रकाशः परमं शिवम्।

(कामधेनु तन्त्र)

इस तत्व का नाम महाकाल है। जैसा कि अथर्ववेद कहते हैं—

इमञ्च लोकं परमञ्च लोकं पुण्याश्च
लोकान् विधृतिश्च पुण्यः।
सर्वंलोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः,
स इयते परमोनुदेव॥

(अथर्ववेद)

पुनश्च—

'कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरि रेताः'

(आदि)

अर्थात्—इस लोक-परलोक सभी विभूतियों को जीतकर अर्थात सब तत्वों से परे होकर काल ही वेद में परम देव कहा गया है। सूर्य-स्वरूप काल ही अन्न उपजाता है, वही ब्रह्म-स्वरूप है। अजर तथा वेगवान् है।

यही तत्व सर्वोत्पत्ति और सर्वोद्धार-रूपक महासंहार-रूप है। यथा—

जटाभार - लसच्चन्द्र-खण्डमुग्रं ज्वलन्निभम्।

अर्थात्—यही अग्निज्वालामय वेद के प्रणेता ऋषि हैं। मेरुतन्त्र का कथन है—

दक्षिणोन्मुखः काल ऊर्ध्व-सायुज्यमाप्नुयात्।

महानिर्वाण तन्त्र इनके कार्य की समीक्षा करता हुआ कहता है—

कलनात्सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः।

स्वच्छन्दतन्त्र का कथन है कि इस सर्वहुत् कालाग्नि पर ही आदितत्व का अधिष्ठान है। यथा—

'शिव-तनुः समाख्यातं तदूर्ध्वं शक्ति-तनुतः।'

इस परम शक्ति के आधार प्रतिबिम्ब-स्वरूप भी अनन्त शक्तियुक्त हैं।

परमेष्ठी गुरुरूप आद्या ने महाकाल को शक्तिपात द्वारा शक्तिदान किया। यथा—

अहं विशामि त्वद्देहे शक्त्या युक्तो भव प्रभो।
तस्मात् भव गुरुर्नाथ.....................(कुलचूडामणि)

उद्धारक्रम में महाकाल ही समस्त मन्त्रों के विषय में एकमात्र गुरु हैं। दीक्षा-रूपी उद्धार-काल में मानव गुरु में उन्हीं का अधिष्ठान होता है। यथा—

आदिनाथो महादेवि महाकालो हि यः स्मृतः।
गुरुः स एव देवेशि सर्वमन्त्रेषु नापरः॥

(योगिनीतन्त्र)

कामाख्या तन्त्र भी इसी का समर्थन करता है। यथा—

मन्त्र-प्रदान-काले हि मानुषे गिरि-नन्दिनि।
अधिष्ठानं भवेत्तस्य महाकालस्य शङ्करि॥

गुरुतन्त्र में भी कहा है—

एक एव गुरुर्देवि सर्वत्र परिगीयते।
भेदस्तस्य न कर्तव्यः सर्वं गुरुमयं जगत्॥

अन्यच्च—

'गुरुरेकः'—कौलोपनिषद्।

पुनश्च—

आदिनाथात् गुरुज्ञानं स्वगुर्वन्तं महेश्वरि।

(शक्तिसंगम)

इस सर्वहुत (यज्ञ) तत्व में पुराण-पुरुषोत्तम कृष्ण द्वारा सम्पादित यज्ञ का वर्णन निम्न प्रकार है—

मन्त्रं यज्ञ-परा विप्राः सरीयज्ञाश्च कर्षकाः।
गिरि-गो-यज्ञ-शीलाश्च वयमद्रि-वताश्रयाः॥
तस्मात् गोवर्धनः शैलो यथावत् विविधाद्रिणा।
अर्चितां पूज्यतां मेध्यान् पशून् हत्वा विधानतः।

(विष्णुपुराण ५-१०-३७, ३८)

वास्तव में मध्यकालीन वातावरण ने नवीनतम सम्प्रदायों की भरमार कर वास्तविक धर्म पर यवनिका डाल दी। फलस्वरूप यज्ञ तथा हिन्दू स्वर्णयुग का अवसान हुआ। विधिहीन यज्ञों से अनेकानेक सङ्कट आते रहे। यथा—

विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति।
तद्यथा विधिपूर्वं तु क्रतुरेष समापयेत्॥

और भी कहा है—'नास्ति यज्ञ-समो रिपुः।'

३—आ (तारा)

'आकारो भानु-तत्वं स्याद् वेद-शास्त्र-प्रकाशकः।'
'प्रज्ञा पारमिते मित् चरिते प्रणत-जनानां दुरितं तरिते॥'

सर्वव्यापकत्व, अतः आकाशवत् नील तृतीय तत्व का वर्णन शक्तिसङ्गम में इस प्रकार है—

महाप्रलयनामा तु सकृदेव प्रवर्तते।
महाप्रलयके जाते ततः शून्यं भविष्यति॥
ब्रह्मरूपा परानन्दा केवला तारिणी परा।
सर्वं तस्यां तु संल्लीनं तद्रूपं सर्वमेव तु॥
महाश्मशान-निलया प्रत्यालीढ-पदा वरा।
शव-सिंहासन-गता महोग्रतारिणी मता॥

अन्यच्च—

सर्व-शून्यालयं कृत्वा तत्र चैकाकिनी स्थिता॥

(महाकालसंहिता)

पुनश्च—

पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्मृता।

(ककारादि)

शक्तिसङ्गम में अन्य वर्णन भी है—

'महाशून्या ततस्तारा....... ।'

मूल तेजस् वह्नि से सूर्यबिम्ब-स्वरूप तेज द्वितीया रूप ही आद्या का प्रकारान्तर-स्वरूप द्वितीय तत्व है, जहाँ सृष्टिमूलक शिव आदिनाथ क्षोभ-रहित आनन्दावस्था में शिखा में भूषण-स्वरूप अवस्थित हैं। जिस प्रकार व्यासदेव ने श्रीमद्भागवत में राम से पूर्ण प्रकारेण विलोम कृष्ण की कल्पना की है, उसी प्रकार यह तत्व भी श्रीविद्या का यथार्थतः विपरीत रूप है। पञ्चतत्वों के अधिप पञ्चप्रेतों को भी नष्ट करके केवल मात्र उनके कपालों का मुकुट धारण किये रागात्मक रक्त-कमलासीनश्री विद्या की लालिमा सर्वव्यापक नीलिमा में परिवर्तित हो गई। सर्व-मोहनार्थ इक्षु-धनु तथा पञ्चमहाबाण (पुष्प-बाण), जो संसार को जड़ता में आबद्ध किये हैं, वे ब्रह्म-कपाल की अग्नि में दग्ध हो रहे हैं। अंकुश तथा पाश द्वारा रुद्ध जीव कर्तृका द्वारा छिन्न-बन्धन हो चिर कैवल्य को प्राप्त करता है। यथा—

'स्मृतापि एकवारं सदामुक्ति-हेतुः'

आद्या तथा द्वितीया का स्थान परमशिव-रूप प्रेत-शिव पर स्थित श्मशान है। इस पृष्ठभूमि के स्मरणमात्र से अहन्ता-ममता विदग्ध हो स्वतः वैराग्य की स्फुरणा होती है। वास्तव में दिगम्बरा मां के ध्यान का अधिकारी जिह्वोपस्थ-ज्ञान-हीन, अहन्ता-ममता-वर्जित पूर्णरूपेण शिशु-अवस्था वाला ही है। ज्ञानी पुत्र के सम्मुख मां वस्त्राभरण से आवृत्त हो जाती हैं, निरीह शिशु का क्रन्दन उसे भीषण क्रोध की प्रतिमूर्ति बना देता है। क्योंकि कहीं कोई शिशु पर अत्याचार न कर रहा हो। एतदर्थ उसकी रक्षा के लिये क्रोधमुद्रा में उनकी आकृति आततायियों को भीषण दीखती है। विधि-

निषेध-ज्ञान से परे शिशु का क्रन्दन अथवा तुतलाना ही मां को प्रिय है, न कि धुरन्धर आचार्यों का स्तवन। वस्तुतः यह तृतीयतत्व आदित्यवर्णात्मक अपार करुणा-वलयित रूप है। यथा—

भवाब्धि-तारणीं तारां चिन्तयित्वा न्यसेत् मनुः।'

४—इ (महाकला)

चतुर्थ तत्व आद्या के नेत्र-त्रयोद्‌भूत महा कामकला है। यथा—

तार्तीय-नेत्ररूपस्तु वह्निरित्यभिधीयते।
अष्टोत्तर-शतं वह्नेः षोडशोत्तरगं रवेः॥
शतं षटत्रिंशत्सोमस्य नेत्र-तृतीयकं शिवे।
महाकामकला देवि शाम्भवादौ प्रयोजिता॥

शक्तिसंगम

अन्यच्च—

काली ललाटनेत्रे च वह्निः तिष्ठति सर्वदा।
वामनेत्रे तथा चन्द्रो दक्षे सूर्यः प्रतिष्ठितः॥

(मातृकाविवेक तन्त्र)

इस प्रकार त्रिविन्दुरूपिणी महाकामकलोत्पत्ति हुई। यह सृष्टिक्रम में चतुर्थतत्व है।

५—ई (श्री विद्या)

पञ्चम तत्व बीजरूप कामकला है। यथा—

हकारार्ध-कला देवि ईकारः परिकीर्तितः।
एवं मिलित्वा देवेशी राजराजेश्वरी परा॥

'शक्तिसङ्गम'

सृष्टिक्रम के लिये आदि-तत्व के विसर्ग तथा द्वितीय तत्व के विन्दु से महाकामकलात्मक त्रिकोण में शिवबीज की अर्ध-कला अर्थात् ईकार के संयोग से श्रीविद्या का उद्भव हुआ। तन्त्र वर्णन करते हैं—

तस्याश्च मानसी शक्तिः तत्र जाता परात्परा।
तस्याः नाम महाकाली सुन्दरीति प्रकल्पयेत् ॥
प्रकर्षेण तु पञ्चानां संयोगो युगपद्भवेत्।
प्रपञ्चेशी तेन विद्या सुन्दरी परिकीर्तिता ॥
ब्रह्म-विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥
एते पञ्चमहाप्रेताः चतुष्कं पाद-गोचरम् ॥
सदाशिवस्तु कशिपुः कामेशच्छादनं भवेत्।
श्रीविद्या देवि देवेशि पञ्च-प्रेतासन-स्थिता ॥
महा-प्रपञ्च-रूपा वै कोटि-ब्रह्माण्ड-नायिका।
षोडशी वै तदा जाता महा श्रीचक्रनायिका ॥

मानसिक शिव—महाकाल से आद्यारूप महाशक्ति की आनन्द-कल्पना में मानसी शक्ति रक्तकाली-रूप श्रीविद्या का उद्भव हुआ। आदि-शिव महाकाल की षट् कलाएँ पाँच आधार-स्वरूप महाप्रेत, छठे कामेश्वर उनके आसन बने। भावनोपनिषद् श्रीविद्या का वर्णन इस प्रकार करता है—

'सदानन्द-पूर्णा स्वात्मैव पर-देवता ललिता।'

यह पूर्ण आनन्द का रूपक ही आत्ममय त्रिपुरसुन्दरी संसार की परमेश्वरी हैं। वेद गायत्री के चतुर्थ पाद में 'परो रजसा सावदोम्' अर्थात् रजोगुण से परे—निर्मल, नित्यत्व, जो वास्तव में श्रीविद्या के भेद पञ्चदशी को लक्ष्य करता है। सृष्टि की स्थिति के लिये उनके आयुध ये हैं—प्रथम-शब्दादि-तन्मात्राः—पञ्चपुष्पबाणाः, मनः—इक्षुधनुः, रागः—पाशः, द्वेषोङ्कुशः वशिन्यादि-शक्तयोऽष्टौ—(वाग्शक्ति)

दुर्वासा-प्रणीत श्रीविद्या महिम्नस्तोत्र में पाशांकुश-चाप-बाणों के रोधन-कर्म तथा अनुग्रह कार्य की उत्तम व्याख्या है। यथा—

पाशं प्रपूरित-महासुमति-प्रकाशं,
यो वा तव त्रिपुरसुन्दरि सुन्दरीणाम्।
आकर्षणेऽखिल - वशीकरणे प्रवीणां,
चित्ते दधाति स जगत्त्रय-वश्यकृत् स्यात् ॥४३॥

श्री विद्या के आयुधों का वर्णन यह स्पष्टतया सङ्केत करता है कि मोक्षमार्ग-निरोधक तत्व ही उनके आयुध हैं तथा वशिन्यादि अष्टशक्ति द्वारा वे वाग्-शक्ति इत्यादि प्रदान करती हैं। अन्यथा शक्ति-रहित जगत् पूर्ण प्रकार से जड़ ही रहता। अरुणोपनिषद् त्रिसङ्केतानुसार शरीर की रचना श्रीचक्रात्मक बताते हैं। यथा—'प्रतिमुञ्चस्व स्वापुरम्।' अर्थात् समष्टि-रूप ब्रह्माण्ड तथा व्यष्टि-रूप पिण्ड से श्रीचक्र का उभयात्मक सादृश्य है। त्रिपुरा महोपनिषद् (अथर्व) श्री चक्र का ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड से ऐक्य-सम्पादन कर लिखता है—'सा षोडशी पुरे मध्यमे बिभर्ति।' अर्थात् कारण-शरीरान्तर अन्तश्चक्र के त्रिकोणान्तर में श्रीविद्या की स्थिति है। इसे वरिवस्या रहस्य में 'अकुल सहस्रदल चक्र' कहा गया है, क्योंकि बहिर्मुखी जीव में अन्तर षट्चक्र के सभी पद्म अधोमुखी हैं। ब्रह्माण्डपुराणोक्त ललिताम्बा सहस्रनाम श्रीविद्या को चिदग्नि-कुण्ड-सम्भूता बताता है। अतः स्पष्ट है कि उनकी चिदग्निरूप आद्या से उत्पत्ति हुई। बृहत्कर्पूरस्तव उनका स्थान आज्ञाचक्रोपरि निर्णय करता है। यथा—

ततस्त्वां वै ध्यायन् द्विदल-युत-पद्मोपरि-गतां।—श्लोक ४८

श्रीविद्या में उपासना-क्रम, जिसका अनुमोदन नवीनतर सम्प्रदाय—समयी तथा त्रिक् भी करेंगे—निम्न प्रकार है—

'सर्ववेद्यं हव्यम्। इन्द्रियाणि श्रुवः। शक्तयो ज्वालाः।
स्वात्मा शिवपावकः। सर्वमेव होता।

वास्तव में यज्ञ ही आर्य-संस्कृति का प्राण था। उसके छिन्न-भिन्न हो जाने से भारत की प्रायः साढ़े सात सौ वर्ष की दासता का इतिहास साक्षी है। अथर्ववेद के त्रिपुरा महोपनिषद् की पन्द्रहवीं ऋचा में यज्ञ का वर्णन निम्न प्रकार दिया है—

परिश्रुता हविषा पावितेन प्रसङ्कोचे गलितैः वै।
सर्वः सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति॥

इसी यज्ञ का वर्णन ऋग्वेद भी करते हैं। यथा—

अपां सोमं भूमागन्म ज्योति रविदां देवान् किन्नु नमस्मान् कृणवद्गतिः किमु धूर्तिः स्मृतं मर्त्यस्य।

(ऋग्वेद ८।४८—३)

अथर्ववेद पैप्पलाद संहिता ६-२३ में निम्न वर्णन मिलता है—

'सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतं, तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्॥'

यथार्थतः कहा है 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।' आत्म-लाभ के लिये शक्ति-सञ्चय आवश्यक है। इसके बिना अपनी तथा देश की रक्षा सम्भव नहीं। अतः वैदिक यज्ञ अत्यन्त आवश्यक हैं। तन्त्र निरूपण करते हैं कि कादि विद्या काली हैं और हादि विद्या श्रीविद्या हैं। यथा—

कादिः काली महाशक्तिः हादिस्त्रिपुरसुन्दरी ।
हादौ तु नियमाः प्रोक्ताः यम-सयमनादयः ॥
कादित्वाच्छक्ति-रूपत्वं हादित्वाच्छिव-रूपता ।

(शक्तिसंगम)

वास्तव में श्रीविद्या का विषय जिसने पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं किया, उसके लिये आगम शास्त्र में कोई अधिकार नहीं है। श्रीविद्या-विषय में निष्णात होने पर ही वास्तविक अधिकार की प्राप्ति होती है और आद्या की पूजा का अधिकार प्राप्त होता है। षोडश स्वर आगम की दृष्टि में शिव-तत्त्व हैं, उन पर अधिष्ठान करनेवाली शक्ति ही हैं, पर व्यंजन शक्त्यात्मक कहे गये हैं। प्रथमवर्ण 'क' आद्यात्मक तथा अन्तिमवर्ण 'ह' शिवात्मक है। इस 'ह' में इकार प्रच्छन्न है। यदि शिव से इकार पृथक् कर दिया जाय, तो शेष 'शव' ही रहता है। इस कारण सर्वत्र शक्ति की प्रधानता है। आदि तत्वात्मक 'श्रीविद्या' में शिवतत्व का स्पष्ट दर्शन है। आद्या और द्वितीया के यन्त्र में केवल शुद्ध शक्ति त्रिकोण हैं, पर श्रीविद्या में ये सृष्ट्यर्थ मिश्रित हैं। अर्थात् शिवशक्त्यात्मक त्रिकोण हैं। यथा—

हादित्वाच्छिवरूपत्वं शिवरूपत्व-भावना ।

(महाकालसंहिता)

आचार्यपाद भी सौन्दर्यलहरी में शिव-शक्ति-त्रिकोणों का विवरण देते हैं—

चतुर्भिः श्रीकण्ठे शिव-युवतिभिः पञ्चभिरपि,
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल-प्रकृतिभिः ।
त्रयश्चत्वारिंशत् वसुदल-कलाश्च त्रिवलयं,
त्रिरेखाभिः सार्धं तव चरण-कोणा परिणताः ॥

शिवतत्व आद्या में निष्क्रिय शव-रूप महाकाल द्वितीया में साक्षी-स्वरूप क्षोभ-रहित आभूषण-मात्र है, पर वहाँ श्रीविद्या में पूर्ण चैतन्य-प्राप्त भावनोपनिषदानुसार 'निरुपाधिक संविदेव कामेश्वरः' अर्थात् उपाधि-रहित आनन्दात्मक शिव का उद्भव हुआ। महाकामकलात्मक त्रिकोण, जिसके त्रिविन्दु मायावीज, कालीवीज तथा कूर्च हैं, उस आद्यारूप ज्ञानाग्नि से शुद्ध अमृत-चिदग्निकुण्ड से श्रीविद्या का उद्भव हुआ। यथा—

चिदग्नि-कुण्ड-सम्भूतं सुन्दरं सद्गुणोदरम्।
रूपं जातु महेशानि मोहरात्रि निशामुखे॥

(महाकाल सहिता)

कुण्ड की परिभाषा तन्त्रों में वर्णित है। यथा—

कुण्ड-रूपं विजानीयात्प्रकृतेः परमं वपुः।

(तन्त्रान्तर)

इस प्रकार श्रीविद्या आद्या का रूपान्तर-मात्र है, जिसकी स्थिति शून्योपरि है। यथा—

'कुण्ड-रूपं विजानीयात्प्रकृतेः परमं वपुः।

(तन्त्रान्तरे)

चिदग्नि कुण्ड से श्री विद्या का उद्भव हुआ, जिनकी स्थिति शून्योपरि है। यथा—

'तत शून्या परारूपा श्री महा सुन्दरी कला।
सुन्दरी राजराजेशी महा ब्रह्माण्डनायिका॥

(शक्तिसङ्गम)

महाकाल संहिता वर्णन करती है कि संकोच-विकाश-क्रम से शक्ति-तत्व अन्तर्हित हो शिव-तत्व विकाश को प्राप्त होता है। यथा—

'रूपं दृष्ट्वा तत्क्षणार्धा राजराजेश्वरः शिवः ।
तस्या कृपा-कटाक्षेण तस्या रूपधरो शिवः ॥

(महाकाल संहिता)

उद्धार-क्रम में अन्य विद्यायें तथा सृष्टि-क्रम में कामेश्वर शिव की उत्पत्ति हुई, जिनमें मुख्यतया ब्रह्मविद्या बगला हैं। यथा—

ईकारः सर्व-वर्णानां शक्तित्वात्कारणं मतम् ।

यही 'ई'-विना शिव भी शव है। यथा—

शक्ति विना महेशानि प्रेतत्वं तस्य निश्चितम् ।
शक्ति-संयोग-मात्रेण कर्म-कर्त्ता सदाशिवः ॥

(नन्दिकेश्वर पुराण)

इस शिव-तत्व को कर्मशील बनानेवाले तुरीय तत्व (महा-शक्ति) का वर्णन कूर्म-पुराण में है। यथा—

शुभ्रं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं द्वैत-वर्जितम् ।
आत्मोपलब्धि-विषयं देव्यास्तत्परमं पदम् ॥

महाशक्ति महामाया सभी को यथायोग्य कर्मों में नियोजित करती है। भर्तृहरिशतक वाक्य है—

ब्रह्मा येन कुलाल-वन्नियमितो ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरे ॥
विष्णुर्येन दशावतार-गहने क्षिप्तो महा-सङ्कटे ॥

इत्यादि

कारण इसका—परम शक्ति की शक्ति है। यथा—

ज्ञानिनामपि चेतांसि—देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

(सप्तशती-१)

अतः शक्ति से श्रेष्ठ कौन है? कहा है—

स्पन्दात्करोति धत्ते ऽतः कल्पितावयवात्मिका ।
काली कपालिनी काली क्रिया ब्रह्माण्ड-कालिका ॥
धत्ते स्थावयवी भूतां दृश्य-लक्ष्मीमिमां हृदि ।
न कदाचित् चिद्देवी निर्देश्यावयवा क्वचित् ॥

(योगवाशिष्ठ)

अर्जुन को समर में विजय-प्राप्ति के लिये श्रीकृष्ण ने इसी शक्ति की स्तुति के लिये प्रेरित किया था। यथा—

शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गा-स्तोत्रमुदीरय ॥

(महाभारत भीष्म पर्व)

पुनश्च—

सा वा एषा देवता दर्नाम दूरं ह्यस्या ।
मृत्युर्दूरं हवा अस्मान् मृत्युर्भवति य एवं वेद ॥

(बृहदारण्य-१-३-९)

अथवा—

सा नो मृड विदथे गृणाना,
तस्यै ते नमो अस्तु देवि ।

(अथर्व १-१३-४)

ललिता सहस्रनाम का कथन है—

यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि च शङ्कर स्वयम् ।
तेनैव लभते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी ॥

यह मोक्ष-मूलक विद्या मृत्यु को हटाकर रक्षा करती है। समस्त वेद की जननी वाक्-रूपिणी भी है। ऋक् का आद्य अक्षर 'अ,' यजुर्वेद का 'ई' तथा साम का 'अ' मिलकर वाक् वर्ण 'ए' बनाते हैं। नाद-विन्दु-विभूषित सारस्वत वीज

त्रिकोण-आधार अर्थात् अथर्व को मिलाकर चारों वेदों का बोधक होता है। यथा—

ऋक् साम योर्यजुषि सन्धि-वशात् उदीर्ण, वीजं सारस्वतं सकृत्तव ये जपन्ति ते शाप वाक्य मुनिवद्विदिता त्रयिका आथवर्णादिकमवाप्य सुखी भवन्ति ॥

(सरस्वतीसूक्त)

इसी कारण नारायणी तन्त्र वर्णन करता है—

'ब्रह्मयामल-सम्भूतं सामवेद-मतं शिवे,
रुद्रयामल-सञ्जातः ऋग्वेदो परमो महान्।
विष्णुयामल-सम्भूतः यजुर्वेद कुलेश्वरी,
शक्तियामल-सम्भूतं अथर्व परमं महत् ॥

उद्धार-क्रम में श्री विद्या विषय-पाशच्छेदन-पूर्वक श्रेष्ठ-मार्ग अथवा शक्ति-विषयक वाममार्ग है, जिसके लिये वेद में प्रार्थना है। यथा—

'वाम नोस्त्वर्यमनू'। वामं वरुणं शस्यम्। वामं ह्वा वृणीमहे।

ऋग्वेद ६-३-४

पुनश्च—

वामदा सवितुर्वाममुखो दिवे, वाममस्यभ्यं सावी ॥

ऋग्वेद ७-७-१

वामस्यहि, क्षयस्य देव भूरे स्थाधिया ॥ वाम भाजस्याम।

यजुर्वेद ८-६-५

अर्थात् हे अर्यमन्! हमको वाम दो, हे वरुण! हमको श्रेष्ठ वाम दो। हम वाम ही की प्रार्थना करते हैं। हे सविता देवता! आज हमें वाम दो, कल भी दिनोंदिन वाम देते

रहो, जिससे हम बहुत से ऐश्वर्यवाले देवताओं—उत्तम बुद्धिवालों के साथ श्रेष्ठ स्थान में वाम के भागी हों।

श्री आद्या अग्नि, तारा सूर्य्य तथा श्रीविद्या सोमात्मक हैं। यहाँ से परा विद्या की उपासना श्रेष्ठ परा क्रम वेद-विहित वामाचार से होती है। वेद, ब्राह्मण, गृह्यसूत्र, स्मृतियों और पुराणों में मांसाहार का उल्लेख शिष्टाचरण के रूप में है। असुरों के समान अमेध्य नहीं। पारस्कर गृह्यसूत्र में लिखा है—

भारद्वाज्या मांसेन वाक्प्रसार कामस्य ॥५॥
मत्स्यैर्जवनं कामस्य ॥६॥
सर्वैः सर्व-कामस्य (१०)

पा० गृ० १ म० काण्ड १६वीं कण्डिका

यजुर्वेद ६६ अध्याय में भी प्रकरण है। यथा—

ब्रह्मक्षत्रं पवते तेज इन्द्रियं सुरया सोमः सुते आसुतो मदाय शुक्रेण देवदेवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि।

अर्थात् यजमान को रसयुक्त अन्न प्रदान करो, ब्राह्मण क्षत्रिय को तेज-युक्त करो। हे सोम! तुम सुरा द्वारा शक्तियुक्त होकर देवता को परितुष्ट करो।

यजुर्वेद—२१-२३ में मत्स्य के विषय में लिखते हैं—

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकान्।
अद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान् ॥

वेद में वाम के अधिक प्रमाण देखने के लिये लाट्यायन, कात्यायन, सांख्यायन, श्रौतसूत्र, शतपथ ब्राह्मण(५-१-१३), ऋग्वेद में ऋषि काक्षिवान द्वारा सुरा-प्रशंसा (ऋ० ५ मण्डल)। तैत्तिरीय संहिता (२-१-४) पशुमांस को हवि कहती है। ऋग्वेद

संहिता ५-२-२२ में पशु-मेद से हवन-विधान है। कात्यायन श्राद्ध कल्पसूत्र में (६-७) स्वय वध कर अथवा क्रय द्वारा मांस से श्राद्ध है। ऐतरेय ब्राह्मण (६-८) के अनुसार अश्वालम्भ आदि भी हैं। अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, सौत्रामणि यज्ञों का वर्णन पूर्णतया इस आचार को स्पष्ट करता है। मनुस्मृति का निर्देश है—

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः।
स प्रेत्य पशुतां याति सभवानेक-विंशतिम्॥ मनु ५।३५

अर्थात् पितृ-देव-यज्ञों में जो यथाविधि मांस नहीं खाता, वह २१ बार पशुयोनि में जन्म लेता है। मनु का कथन है—

पाठीन-रोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्य-कव्ययोः।

अर्थात् देव-पितृ-कर्म में प्रदत्त मत्स्य (पाठीन, रोहित-जाति) का भक्षण करे। पुराणों में भी वर्णन है—

पितृ-देवादि-शेषश्च श्राद्धे ब्राह्मण-काम्यया, प्रोक्षितञ्चौषधार्थं च खादन्मांसं न दुष्यति। (मार्कण्डेय पुराण)

मत्स्यास्त्वेते समुद्दिष्टा भक्षणाय तपोधनैः॥

(कूर्मपुराण)

श्रीमद्भागवत का कथन है—

लोके व्यवायामिष मद्य-सेवा स्वतः प्रवृत्ति र्नहि तत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाह-यज्ञा सौत्रामणेरासुर-वृत्तिरिष्टा॥

यह कथन आमिषादि का व्यवहार 'कुलार्णव' की भाँति—केवल यज्ञों के लिये वैध बताता है।

यजुर्वेद संहिता का २।३४।१ वाँ मन्त्र—

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् स्वधास्थतर्पयत मे पितॄन्'— अमरकोषानुसार परिस्रुत शब्द का अर्थ स्पष्ट है।

कात्यायन कल्पसूत्र ३।७७।—

अस्य मध्वः पिवत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः।

अर्थात इस मधु से उन्मत्त हों।

श्री मद्भागवत—स्कन्ध ४, अ० २५, श्लो० ६ का वर्णन है—

धार्मिक कार्यों के निमित्त मृगया द्वारा मेध्य पशु का वध करे। पुनश्च—५-१५-१२ में राजा गय के यज्ञ का वर्णन भी अवलोकनीय है तथा १० (उत्तरार्ध ६५, श्लो० १९-२०) में बलराम के सुरा (वारुणी) पान का वर्णन है (श्रीमद्भागवत)।

भविष्य पुराण अ० १७३ में यही श्रीकृष्ण का वर्णन है। तथा अध्याय १६ में आपत्र ब्राह्मण का वर्णन है। वह दूसरे जन्म में वरुण देवता हुआ। ब्रह्माण्ड पुराण (पू० मो० १२१) में यही वर्णन कश्यप ऋषि का है। सहस्रों उदाहरण वेद-पुराणों के हैं। महाभारत, वाल्मीकि रामायण यदि पढ़ें, तो यह सब स्पष्ट हो जायगा।

वेदों का मूल गायत्री, उसका मूल प्रणव है। यथा—

वेदमाता च गायत्री तदाद्य प्रणवः स्मृतः।

(महा कामकला विलास)

यह मन्त्र वेद-चतुष्टय द्वारा सम्मानित है। ऋग्वेद के अध्याय ४, मण्डल २, सूक्त ६२ में गायत्री मन्त्र है। यजुर्वेद संहिता के अध्याय ३ का पाँचवाँ मन्त्र गायत्री है। सामवेद का सावित्री उपनिषद् है। अथर्व के सूर्य्योपनिषद् में भी गायत्री मन्त्र है। छान्दोग्य तथा वृहदारण्यक आदि में भी गायत्री की प्रचुर महिमा गायी है। मनु, पराशर तथा अन्य भी 'गायत्री मातेदं ब्रह्म जुषस्व मे'— इसी श्रुति-वाक्य का समर्थन करते हैं। भविष्य पुराण का कथन है—

'सर्व-पापानि नश्यन्ति गायत्रीं जपतो नृप।'

इसी प्रकार अग्नि, पद्म, देवी भागवत आदि पुराण भी गायत्री-महिमा का गान करते हैं। याज्ञवल्क्य का कथन है—

गायत्री वेद-जननी गायत्री पाप-नाशिनी।

सामवेदीय सावित्र्युपनिषद् कामबीजन्यास द्वारा बलाचातिबला विद्याओं का वर्णन करते हैं। ऋग्वेदीय स्वरस्वती-रहस्योपनिषद् में त्रितार, चतुर्तार (आगमोक्त बीजों) का प्रयोग तथा ऋग्वेद दश मन्त्रों द्वारा स्वरस्वती शक्ति जिसे निघण्टु में 'नम्न' कहा गया है तथा जिसे शतपथ-ब्राह्मण-विधान में पशुबलि दी जाती है, वाक् या वाग्देवी की स्तुति है। वरिवस्या रहस्य के रचयिता मार्तण्ड-स्वरूप श्री भास्करानन्द गायत्री के १५ अर्थ—त्रिपुरोपनिषदीय प्रतिपाद्यार्थ, भावार्थ, सम्प्रदायार्थ आदि आदि देते हैं और सिद्ध करते हैं कि छान्दोग्य उपनिषदीय ३-१-५ सूर्य की ऊर्द्धमुख परो रजा किरणें ब्रह्मतत्व पुष्प से मधुकर-रूप 'गुह्य आदेश' अर्थात् आगम ऊर्द्धाम्नाय की पञ्चदशी विद्या का प्रथम कूट ही गायत्री है और गुह्य चतुर्थ पाद 'परो रजा सावदोम्' ही (रजोगुण से परे) निर्मल प्रणव ही पञ्चदशी विद्या है, जिसका उद्धार न कर रहस्यात्मक वर्णन वेद के देवीसूक्त आदि में है। ऋग्वेदोक्त बृहत्वृचोपनिषद् आदि भी अथर्ववेदीय देव्युपनिषद् की भाँति इस त्रिकूटा पञ्चदशी का वर्णन प्रकाश-रूप से नहीं देते। वेद का कथन है कि गायत्री के त्रिपाद प्रकट, चतुर्थ अत्यन्त ही गुप्त है (बृहदारण्यक १४ ब्राह्मण)। छान्दोग्य, अध्याय ३ में पञ्चामृत-विद्या-विषय में 'गुह्य आदेश' को वेदामृत का अमृत कहा है। यही मधुरूप पञ्चदशी अथर्व की शौनक तथा ऋग्वेद की सांख्यायन शाखा में इस प्रकार वर्णित है—

'कामो योनिः 'कमला वज्रपाणिः' आदि। रहस्य प्रगट नहीं किया गया। यह आगमोक्त ऊर्द्धाम्नाय ओघत्रय द्वारा प्रगट हो शिष्य-परम्परा में चलता है। ऊर्ध्वाम्नाय-विषय में शास्त्र की निम्न व्यवस्था है—

काली तारा छिन्नमस्ता तथा कामकलापि च।
श्रीमहाषोडशी चेति ऊर्ध्वाम्नाय प्रकीर्तितः॥

(महाकाल संहिता)

यह ऊर्ध्वाम्नाय कैवल्य-स्वरूप है। यथा—

ऊर्ध्वत्वात् सर्व-धर्माणां ऊर्ध्वाम्नायः प्रशस्यते।

(कुलार्णव)

श्रुति-वचन है—

शास्त्र-दृष्ट्या तूपदेशो वामदेव-वत्।

—ब्रह्मसूत्र

तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः॥

वृहदारण्यक (१-४-१०)

अर्थात् शिव से षडाम्नाय प्रगट हुए। पूर्वमुख तत्पुरुष—सामवेद रूप, दक्षिण अघोरमुख अथर्व, पश्चिम मुख सद्योजात ऋग्वेद, उत्तर वामदेव मुख यजुर्वेद तथा ऊर्द्धमुख ईशान—ऊर्द्धाम्नाय, जिसमें उद्धार-क्रमानुकूल मुख-शुद्धिवाला विद्याधिकारार्थ पञ्चदशी तथा शुद्ध दीक्षार्थ षोडशी विद्या है। बिना षोडशी दीक्षा के साधक अदीक्षित कहा जाता है। जैसे गायत्री-दीक्षा (द्विज-संस्कार) के बिना वेद का अधिकार नहीं होता, उसी प्रकार बिना श्रीविद्या मनुष्य आगम में अदीक्षित है। वेद का गुह्यातिगुह्य अर्थात् गुह्य आदेश रूप अमृत आगम ऊर्द्धाम्नाय का प्रवेश-द्वार है। आगम वर्णन करते हैं—

शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः शक्तिः ब्रह्म जनार्दनः।
शक्ति-रूपं जगत्सर्वं यो न जानाति नारकी॥

पुनश्च—

आदि-मध्यान्त - रहिता गुणातीता महोज्वला।
आदर्शवत्स्वच्छरूपा महाशक्तिः प्रकीर्तिता॥

(देवी भागवत)

तैत्तरीय आरण्यक के प्रथम प्रपाठक अरुणोपनिषद् वर्णन करते हैं—

'मरीचयः स्वयम्भुवाः ये शरीरण्यकल्पयन्।'

अर्थात् सूर्य की ऊर्ध्व किरणें परोरजारूप तुम्हारे देह का आश्रय लेती हैं। त्रिपुरागम वर्णन करते हैं—

'विराजते जगच्चित्र चित्र-दर्पण-रूपिणीम्॥'
'स्व-महिम्नि प्रतिष्ठितः'।

प्रपञ्चनायिका श्रीविद्या अधोदृष्टि से स्व-यन्त्रात्मक ब्रह्माण्ड-चित्र को अवलोकित करती अपने संविद्-विन्दु में प्रतिष्ठित हैं। यथा—

संविद्वेद्यं महाचक्रं गेयं ब्रह्म-स्वरूपकम्।
तत्र पर-शिवाङ्कस्था महा त्रिपुरसुन्दरीम्॥ (गन्धर्व तन्त्र)

इस महाविन्दु का वर्णन आगम इस प्रकार करते हैं—

(१) अमोघमव्यञ्जनमस्वरं च।
अकण्ठ-ताल्वोष्ठ-नासिकं च॥
अरेफ - जातोपयोष्ठ - वर्जितं।
यदक्षरो न क्षरेत् कदाचित्॥

अन्यच्च—

(२) 'अर्द्ध-मात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।

(सप्तशती)

(३) विन्दुरेकं भवत् पुरा, श्रीमहासुन्दरी-रूपं विभ्रती परमा कला ॥

(शक्तिसङ्गम)

(४) हङ्कारो विन्दुरित्युक्तो विसर्गः स इति स्मृतः ।
विन्दु शिवरित्युक्तो विसर्गः प्रकृतिः स्मृतः ॥

(आगम कल्पद्रुम)

(५) त्रि-विन्दुं परमं तत्वं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम् ।
वर्ण-मयं त्रिकोणं तु जायते विन्दु-तत्वतः ॥

(ऊर्ध्वाम्नाय तन्त्र)

(६) अथ काम-कलां वक्ष्ये तद्देवतात्मक-रूपकम् ।
त्रिविन्दुस्था त्रि-शक्तिस्था त्रिमूर्त्तिस्था सनातनी ॥

(भैरव-यामल)

मूल विन्दु = अव्यय विन्दु । विन्दु = सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्त ।

(७) प्रणवं सुन्दरी-रूपं कला सप्तक-संयुतः ।

(शक्ति-सङ्गम)

(८) ब्रह्म-विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवो देवि षट्-शिवा परिकीर्तिताः ॥

(९) छठी कला—'शून्यया परया शक्त्या ।

(विज्ञान-भैरव)

तदूर्द्ध्वे चार्द्ध-मात्रा तु गान्धार-रागमाश्रिता ॥

(त्रिविक्रम-संहिता)

(१०) ब्रह्मादयश्चतुष्पादा कश्यपुस्तु सदाशिवः ।
आच्छादनं तु कामेशस्तत्रस्था सुन्दरी कला ॥

(महाकाल संहिता)

(११) बालार्क - मण्डलाभासां चतुर्बाहुस्त्रिलोचनां ।
पाशाङ्कुश - धनुर्बाणान् धारयन्तीं शिवां भजे ॥

(शाक्त-प्रमोद)

(१२) तवाज्ञा - चक्रस्थं तपन-शशि - कोटि-द्युतिधरं ।
परं शम्भुं वन्दे परि-मिलित पार्श्व-परचिता ॥

(आनन्दलहरी)

(१३) सर्वाङ्ग-कल्पनं देवि ह्यर्थ-वादः प्रकीर्तितः ।

(दक्षिणा सर्वस्व)

अर्थ = सर्वाङ्ग —प्रणव (साधारण अर्थ) = नित्य

(१४) सर्व-चन्द्र-मयो योगी ध्यान-चन्द्रं समभ्यसेत् ।

(भाव-चूड़ामणि)

(१५) अहं गुरुरहं देवो मन्त्रार्थोऽहं न संशयः ।

(रुद्रयामल)

(१६) मन्त्र—गुरुरूपो भवेद्देवी देवी-रूपो गुरुः स्मृतः ।
मन्त्र-रूपी भवेदात्मा चात्मानस्तन्मयो भवेत् ॥

(शक्ति-सङ्गम)

(१७) यन्त्रं मन्त्र-मयं प्रोक्तं देवता मन्त्र-रूपिणी ।

(कुलार्णव)

बैन्दवे च महाकाशे सच्चिदानन्द-लक्षणे ।
निर्विकल्पे निराभासे निष्प्रपञ्चे निरामये ॥

(कामकला-विलास)

इस विन्दु से प्रपञ्च का उद्भव होता है। यह विषय केवल आगम ही मन्त्रशास्त्र द्वारा बीज-विश्लेपण-पूर्वक समझा सकता है, अन्य शास्त्र केवल बिडम्बना-मात्र व्याख्या

कर सकते हैं। जैसे तन्त्र प्रणव का वर्णन निम्न प्रकार करता है—

'प्रणवः सुन्दरी-रूपः कला-सप्तक-संयुतः।'

(शक्ति-सङ्गम)

प्रणव में बिन्दु—अनुच्चार्यकला श्रीविद्या-स्वरूप है। अन्य छः कलाएँ षट्-शिवा कहलाती हैं। ये पञ्चकृत्यकारी महाप्रेत एवं अधिष्ठान-रूप कामेश्वर हैं। यथा—

ब्रह्मा-विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते पञ्च महाप्रेताः प्रणवं च समाश्रिताः॥
ब्रह्मादयश्चतुष्पादाः कश्यपुस्तु सदाशिवः।
आच्छादनं तु कामेशस्तत्रस्था सुन्दरी कला॥

(शक्ति-सङ्गम)

पुनश्च—

पुं-रूपेण हकारं च स्त्रीरूपेण सकारकम्।

(रुद्रयामल)

अन्यच्च—

प्रणवाज्जायते हंसो हंसः सोऽहं परो भवेत्।
हकारार्णं सकारार्णं लोपयित्वा ततः परम्॥
सन्धिं कुर्यात् ततः पश्चात् प्रणवोऽसौ महामनुः।

(रुद्रयामल)

उपर्युक्त कामकला के त्रि-विन्दु अग्नि-सूर्य-चन्द्र-रूप त्रिकोणात्मक यन्त्र का निर्माण करते हैं। यथा—

अथ कामकलां वक्ष्ये तद्देवतात्मक-रूपकम्।
त्रिविन्दुस्सा त्रिशक्तिस्सा सनातनी॥

(यामल)

त्रि-विन्दुं परमं तत्वं ब्रह्मविष्णु-शिवात्मकम्।
वर्णमयं त्रिकोणं तु जायते विन्दु-तत्वतः ॥

(ऊर्ध्वाम्नाय तन्त्र)

इन सप्त कलाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

आदौ परा विनिर्दिष्टा ततश्चैव परात्परा।
तदतीता तृतीया स्यात् चित्परा च चतुर्थिका ॥
तत्परा पञ्चमी गेया तदतीता रसाभिधा।
सर्वातीता सप्तमी स्यात् एवं सप्त-विधा कला ॥

(शक्तिसंगम)

प्रणव की सातवीं कला अनुच्चार्य विन्दु अव्यय-स्वरूप अविभाज्य है। इस विन्दु से विसर्ग-रूप शक्ति-तत्व वह्नि-इन्दु तथा मिश्र (सूर्य) विन्दुओं से त्रिकोण बन कर मूल विन्दु को आवृत्त करते हैं। मूल बिन्दु से उद्भूत वर्णमाला सोलह वर्ण-युक्त वामावर्त-क्रम से इस मूल शक्ति त्रिकोण की तीन भुजाएँ हैं। त्रिकोण-शीर्ष-स्थित तीन बिन्दु अर्थात् सूक्ष्मतर वृत्त कलारूप होने से विभाजित होकर दो-दो अर्ध वृत्त बनाते हैं अर्थात् तीन से द्विगुणित अर्धाकृति छः वृत्त ही षट्-शिवा-रूप हैं। मूल विन्दु त्रिपुरा-रूपक है। यथा—

तत्र विन्दोः परं रूपं सुन्दरं सुमनोहरम्।
रूपं जातं महेशानि जाग्र त्त्रिपुरसुन्दरी ॥

(महाकालसंहिता)

उक्त प्रकार से श्रीविद्या से प्रणव, प्रणव से गायत्री तथा गायत्री से वेदों का आविर्भाव हुआ और यही प्रणव षट्चक्र, देवता के स्वरूप तथा यन्त्र में व्याप्त है।

उ=कामेश्वर

श्री विद्या से निरुपाधिक कामेश, श्रीचक्र (अनन्त ब्रह्मांड) एवं षोडश नित्योत्पत्ति हुई। यथा —

> अहमेव जगत्सर्वं नास्ति किञ्चिन्मया विना।
> यत्तु पश्यसि हे वत्स यत्किञ्चिज्जगती-तले॥
> ब्रह्मादि - स्तम्भ-पर्यन्तं अहमेव न संशयः।
> प्रकृत्या क्रियते कर्म साक्षी पुरुष उच्यते॥
> तन्माया मोहितः सोऽथ कर्त्ताहमिति मन्यते॥
>
> (गन्धर्वतन्त्र)

सृष्टि की विकासोन्मुखी क्रिया में, जहाँ शिव-तत्व का विकास होता है, वहाँ उसकी चैतन्य-कारिणी शक्ति संकुचित होती हुई अन्तर्हित होती जाती है और शिव-तत्व विकासावस्था में अहम् (अ+ह=५० अक्षर) को प्राप्त होकर अपने ही कर्तृत्व-रूप का बोध करता है। विकास-क्रम के सर्व-प्रथम कामेश तत्व सदाशिव महाप्रेतासीन पूर्ण-रूपेण निरुपाधिक हैं। उनसे पञ्चकृत्यकारक पञ्चशिव प्रकट होते हैं। कामेश शिव ही तन्त्र के वक्ता हैं। जीवोद्धार-क्रम में नाथ तत्व के उत्पादक हैं। यथा—

> 'नाथस्तत्वैश्च नित्याभिः कालनित्यान्त-विग्रया।'

अर्थात् महाकाल-नित्या से पन्द्रह नाथ-तत्व हैं। इन्हीं कामेश्वर शिव से आगमों का उत्पादन हुआ। यथा—

> मतं परशिवस्येदं वक्ता देवो महेश्वरः।
> सरस्वती लेखनी तु गणेशो लेखकः मतः॥
> पृथ्वी पत्री महादेवि नाथाः शास्त्रस्य बन्धकाः।
>
> (शक्तिसङ्गम)

कामेश की निज करुणा से ही त्राणमूलक तन्त्रों का उदय हुआ) यथा—

तनोति विपुलानर्थान् तत्वमन्त्र-समन्वितान्।
त्राणं यः कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते ॥

(कालिकागम)

पुनश्च—

कर्णात्कर्णोपदेशेन सम्प्राप्य अवनी-तलम्।

(वामकेश्वर तन्त्र)

इसलिये श्रीविद्या-विषय में गुरु-परम्परा निम्न कही गई है—

शिवात्स्वगुरु-पर्यन्तं ज्ञानपूजा अनुत्तमा।

(संहिता)

तन्त्रशास्त्र में वर्णन है कि कामेश शिव स्वयं जगदम्बा की अपरा पूजा करते हैं। यथा—

'शम्भुः पूजयेत् देवीं सर्वमन्त्रमयीं शुभाम्।'

इन कामेश शिव से जीवोद्धार-क्रम में शास्त्र तथा उनके मूल नवनाथ एवं औघ त्रय की उत्पत्ति है।

ऊ=नवनाथ

उद्धार के मूल में गुरु-तत्व ही है। गुरु-तत्व में अन्तिम गुरु आद्या, परम्परा में परात्पर गुरु आदिनाथ, नवनाथ-मण्डल स्वगुरु-पर्यन्त है। नवनाथ-मण्डल हादि-कादि और कहादि क्रम में भिन्न-भिन्न हैं, पर प्रयत्नपूर्वक नित्य रात्रि के तुरीय याम में चिन्तनीय हैं। यथा—

तुरीय-यामिनी यामे कुण्डलिन्या महौजसि।
एतान्कुलगुरून् ध्यायेदूर्ध्वाम्नाय उदीरिताम् ॥

(श्रीविद्यार्णव)

ऋ=शिवादि गुरुषडाम्नाय क्रम

पर-शिव कामेश्वर के मत को प्रकाशित करनेवाले पञ्च-वक्त्र महादेव षडाम्नाय-क्रम से जो उपदेश देते हैं, वही मूल तन्त्र-श्रुति है। यथा—

गुरु-शिष्य-पदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।
प्रश्नोत्तर - पदैर्वाक्यैस्तन्त्रं समवतारयन् ॥

पुनश्च—

'गुरुराद्या भवेच्छक्तिः सा विमर्शमयी मताः।'

अर्थात् प्रथम शक्ति की, जो गुरु-रूपिणी हैं, कृपा प्राप्त किये बिना कुछ भी स्फुट रूप में नहीं जाना जा सकता है। उनका विग्रह विमर्श-रूप है और उद्धार के लिये वे शक्तिपात करते हैं। यथा—

शक्तिपात-वशाद्देवि नियते सद्गुरुं प्रति।
दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते कर्म-वासना ॥

ये शिवादि-गुरु षडाम्नाय के मूल प्रवर्तक हैं।

ऋ॰=शाम्भव षडन्वय

योग की सिद्धिमूलक षड् कुजा-युक्त शाम्भव षडन्वय कामेश और कामेशी-युक्त तत्त्व हैं। यथा—

तन्मिथुनं गुणभेदास्ते विन्दु-त्रयात्मके त्रस्ते।
कामेशी-मित्रेश-प्रमुख-द्वन्द्वलयात्मना विततम् ॥

(कामकलाविलास तन्त्र)

इस प्रकार स्वयं श्रीविद्या से उनकी त्रिविन्दु-स्थिति से कामेश्वर्यादि नित्या तथा शाम्भव-षडन्वय की उत्पत्ति हुई।

लृ लॄ ए = दिव्यौघ सिद्धौघ मानवौघ

औघत्रय तत्व = दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ—शाम्भव षडन्वय से औघत्रय की उत्पत्ति हुई। यथा—

षड् शाम्भवे महेशानि औघत्रयमुदीरितम्।
शिवादौघाः समुद्भूतास्त्वौघ-पूजा-परम्परा ॥
दक्षमूर्त्या गणादिकं तथैव वटुकादिकम्।
आनन्दभैरवादि तत्सर्वमौघत्रय - मध्यगम् ॥

(शक्तिसंगम)

पुनश्च —

औघाः प्रवर्तकाः लोके ते पूज्याः सर्वथैव तु।
परम्पर्यात्क्रम-गता भिन्न-भिन्नाः प्रकीर्तिताः ॥

(महाकाल संहिता)

मूल में एकरूप होने पर भी विद्यावतारादि भिन्न भिन्न प्रकार के विद्या विशेष में इनके स्वरूप हो जाते हैं।

ऐ = अष्टवाक् १६ नित्या

कादि-हादि की षोडश नित्याएँ तथा अष्ट-वाक् श्रुति इस तत्व के अन्तर्गत हैं। यथा—

मुखादुच्चारिते सर्वं वाग्भवं मुखमुच्यते।
वाचा सर्वं सम्भवति जगत्स्थावर-जङ्गमम् ॥
शक्तिः सचेतना प्रोक्ता जडं पर शिवो मतः।
विना शक्त्या निर्गुणस्य मुखादुच्चारणं कुतः ॥
तस्माच्छक्ति विहायाथ सर्वत्र जडता मता।

(शक्तिसङ्गम)

ये वाग्देवता आठ शक्तियाँ हैं। नित्या-रूपक मूल त्रिकोण से संलग्न इनकी स्थिति है। इनके नाम क्रमशः वशिनी,

कामेश्वरी, मादिनी, विमला, अरुणा, जयिता, सर्वेश्वरी तथा कौलिनी हैं। यही आठ शक्तियाँ शब्द-प्रमाण के निर्माता आदि शास्त्रों का निरूपण करती हैं तथा मातृका-स्वरूप हैं। आदि शास्त्र तथा कादि हादि षोडश नित्या के विना संसार-चक्र तथा कैवल्य-प्राप्ति साधक के लिये सहजगम्य नहीं है। ये साधक का मार्ग सरल बना देती हैं।

धो = वर्णमाला

मालिनी अर्थात् मातृका-अनन्त से उद्भूत विन्दु की कम्प-ध्वनि से मातृकोत्पत्ति हुई। जैसा कि शास्त्रों में निर्दिष्ट है—

> विन्दु-ध्वनि सकाशात्तु प्रत्येकं वर्ण-जातयः।
> मातृकाणास्तदा जाता अक्षरेति तदाभवत् ॥
> ध्वनिना व्याप्तमखिलं जगदेतच्चराचरम्।
> अद्यापि देवि देवेशि कादम्बर्याः ध्वनिः श्रुतिः ॥

(शक्ति-सङ्गम)

इसी मातृका-ध्वनि से कुण्डलिनी के पृथक् वलय धारण करने से ५१ तत्व हुए। यथा—

> एकैकं मातृका-वर्णाः प्रति-विद्या-प्रकाशकः।
> उत्पन्नो परमेशानि सोत्पत्तिषु परायणा ॥
> यो-भावो यस्य वै प्रोक्तस्तद्भावे संस्थिता परा।
> स्वेच्छया वलयं कृत्वा यथा कुण्डलिनी स्थिता ॥

(शक्तिसङ्गम)

इन वर्णों से सर्वोत्पत्ति हुई, तथा वर्गाष्टकों से अष्टपाश-अधिष्ठात्री देवियाँ ब्राह्मी आदि उद्भूत हुईं, जो संसार को

अष्टपाशों में बन्धनमुक्ति करती हैं तथा साधक को काम-क्रोधादि अष्ट विकारों से विमुक्त कर मार्ग निष्कण्टक बनाती हैं।

औ = छिन्ना

छिन्ना-तत्व—इस विद्या को 'वज्र-वैरोचनी' भी कहा जाता है। 'वैरोचन' अग्नि का नाम है। इसलिये मणिपूर चक्र में इसकी स्थिति है। ध्यान यथा—

> श्मशान-निलया छिन्ना शव-विष्टर-सम्मता ।
> शव-रूप करालास्य हृदयोपरि संस्थिता ॥

बृहदारण्यक में कही गई मधु-विद्या अश्वशिरा उद्यगथार्वण ऋषि द्वारा जिनका उपदेश हुआ है, तथा भागवत-वर्णित हयग्रीव विद्या यहीं हैं। जनक की सभा में याज्ञवल्क्य ने शाकल्य का मूर्धापात इसी विद्या से किया था। यही छिन्ना सुषुम्नान्तर्गत वज्रा नाड़ी को जीव के लिये वज्र-वत् तथा साधक के लिये ऊर्ध्व-भेदन के लिये कुसुमवत् बना देती हैं। यथा—

> तव च्छिन्नं शीर्षं विदुरखिल धाम्यागम-विदो ।
> मनुष्याणां मध्ये वदुत तपसा याद्विदलिते ॥
> सुषुम्नायां नाड्यां तनुकरण-सम्पर्क-रहिता ।
> बहिः शक्त्या युक्ता विगत-चिर-निद्रा विलयसि ॥

(उमा साहस्रम)

छिन्ना का स्थान सुषुम्ना में संसार-स्थिति तथा साधक के लिये वज्र-रूप कपाटोद्घाटन के लिये परमावश्यक है। इन कार्यों में आसन, मुद्रा आदि गौण हैं। एतदर्थ,तन्त्र क्रमदीक्षा-रूप उपासना का योग-सिद्धि के लिये निरूपण करते हैं। अन्य कोटि प्रयत्न वृथा हैं। आगम में इन्हें अरुणा काली कहते हैं।

अं = बगला

नाथ-तत्व-क्रम का अन्तिम १५ वाँ तत्व बगला है। आगमोक्त नाम पीत-काली भी है। इनके वर्णन में स्वतन्त्र तन्त्र का कथन है—

श्री विद्या सम्भवं तेजो विजृति इतस्ततः।
ब्रह्मास्त्र-विद्या सञ्जाता त्रैलोक्य-स्तम्भिनी मताः ॥

पुनश्च—श्री विद्याङ्गा तु बगला ताराङ्गा छिन्नमस्तका।

(शक्तिसंगम)

शुक्ल यजुर्वेद, माध्यन्दिनी संहिता के ५ वें अध्याय की २३, २४, २५ कण्डिकाओं में इस महाविद्या का वर्णन है—

रक्षोहणो वलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं वलगमुत्किरामि।

अथर्ववेद का वलगा-सूक्त प्रसिद्ध है। यथा—

कृत्या कृतं वल्गिनं मूलिनं शपथेऽप्यम् (अथ० ५-६—)

सिद्धविद्या बगला का ध्यान निम्न है—

.................................बगलां श्रृणु पार्वति।
स्वर्ण- सिंहासनस्था या पञ्च-प्रेत-स्थितापि च ॥

(शक्तिसङ्गम)

ब्रह्माण्ड-समूह में पञ्चभूत-नियन्त्रण तथा वायु-स्तम्भन एवं पिण्डाण्ड में प्राणवायु-स्तम्भन व आधान करने, जिसके बिना कुल कुण्डलिनी-योग असम्भव ही है, कारण वायु मन से सम्बन्धित है। प्राण-स्तम्भन से ही वायु वश में होता है तथा चञ्चल मन शान्त हो योग सुलभ होता है। यथा—

स्तम्भन-शक्ति वगलामुखी अन्तः शत्रु-स्तम्भन-कामो वा।
अन्तर्वायुं सञ्चार-निरोधेन वा, यो वायुं स्तम्भयेत् स सर्वं स्तम्भयेत् ॥

(बगला पटल)

आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा—ये चार केवल मन्त्र-शास्त्र में बगला विद्या द्वारा ही सिद्ध होते हैं। अन्य हठयोग आदि से कदापि सम्भव नहीं। अणु शक्ति आदि अधिकाधिक सूक्ष्मतर शक्तियाँ इसी विद्या के अन्तर्गत हैं। वायु को वश में कर उसका निरन्तर पान ही योग-सिद्धि का कारण है। यथा—

पिवेद्वायुमहर्निशम्, सूक्ष्मवायु-क्रमेणैव सिद्धो भवतियोगिराट् ॥

पुनश्च—पीत्वा वायु जपेद्यस्तु स्थिरच्चेताः प्रकीर्त्तितः ॥

अथवा—वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधनम् ॥

अन्यच्च—प्राणवायु-वशेनापि वशीभूताश्चराचराः ॥

(रुद्रयामले)

वायु-भक्षी यथा सर्प कुण्डलिनी वायु-भक्षिणी।

(रुद्रयामल)

यह वायु-पान ही कुण्डलिनी की चैतन्यता के मूल में है। केवल श्री बगला-उपासना द्वारा ही यह हो सकता है। इसी कारण इस ब्रह्मविद्या का क्रम दीक्षा में मुख्य स्थान है। यथा—

हादि-योगान्भवेन्मेधा-साम्राज्य काद्यन्तगोचरम्।
कहाद्यन्तं दिव्य-साम्राज्यं मेधा-दीक्षा प्रकीर्तिता ॥
छिन्ना समस्त-दीक्षान्ते विद्या राज्यभिदा भवेत्।
साम्राज्य-पारमेष्ठाख्या बगला भेद-दीक्षणात् ॥
एतद्दीक्षोत्तरं देवि नान्य-दीक्षास्ति कुत्रचित्।
विना श्री विद्यया देवि साधकोऽदीक्षितो भवेत् ॥

(शक्तिसङ्गम)

ये ही पाँच महाविद्याएँ काली, नीलकाली, रक्तकाली, अरुणकाली तथा पीत-काली कहलाती हैं। पीताम्बरा के बिना कुण्डलिनी-जागरण तथा योग असम्भव है।

क्ष = भुवनेश्वरी शक्ति-तत्व

'भुवनानां अधीश्वरी' अथवा 'भुवनानां उत्पादयित्री ।'

शक्तिसङ्गम तन्त्र वर्णन देते हैं—

महाकालेन भवेन्माया सा प्रोक्ता भुवनेश्वरी ।

इन आदिनाथ से उद्भूत शक्ति से ब्रह्माण्डों की रचना, शासनादि कृत्य होते हैं । उनके आसन में पञ्चमहाप्रेत हैं । यथा—

ब्रह्मा-विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पञ्च महाप्रेता पादमूले मम स्थिता ॥
पञ्च भूतात्मकाः ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि ।
अहं त्वव्यक्त चिद्रूपा तदतीतास्मि सर्वथा ॥

(देवीगीता)

यही पञ्च महाप्रेत पञ्चकृत्य-कारी अर्थात् सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह रूप हैं । ये आणव, कार्मण, माया, प्राकृत, अहम् मलों से जीवों को आवृत करते हैं । यथा—

आणव्यं कार्मणं चैव माया प्राकृतमेव च ।
अहंकारं पञ्चम स्यात् सृष्टि-स्थिति-लयस्तथा ॥
निग्रहेऽनुग्रहो देवि पञ्चैता प्रकीर्तिताः ।
आणव्यं ब्रह्मण स्यात् विष्णोश्च कार्मण मलः ॥
माया-मलस्य रुद्रस्य प्राकृतस्तु तथेश्वरी ।
सदाशिवश्चाहङ्कारः परशम्भो न किञ्चन ॥

(शक्तिसङ्गम)

विकाशोन्मुख शिव इन पाँच मलों से युक्त हो जीव-संज्ञक बन जाता है । शिव तत्व को चेतना तथा विकाश-युक्त करती

हुई स्वयं शक्ति अव्यक्त होती जाती है, पर केन्द्रीभूत अनेकधा व्याप्त शक्ति ही अणु-प्रत्यणु आदि को शक्तिमय बनाती है। यथा—

शक्तिं बिना महेशानि सदाहं शव-रूपकः।
शक्तियुक्तो यदा देवि शिवोऽहं सर्व कामदः॥

(शक्तिकागम सर्वस्व)

अन्यच्च—चित्ति स्वतन्त्र विश्वसिद्धि हेतुः॥

अर्थात् विश्व की कारण शक्ति स्वतन्त्र है। कहा है—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्व-रूपिणी।
स्फुरदात्मानं पश्येत्तदा चक्रस्य सम्भवम्॥

अर्थात् विश्वरूप धारण करनेवाली परा शक्ति जब स्वेच्छा से अपने ही में स्फुरण करती है, तब संसार-चक्र की उत्पत्ति होती है।

अथवा—देव्या यया तत्तमिदं जगदात्म-शक्त्या।

(सप्तशती)

अर्थात् देवी ने समस्त जगत् को अपनी ही शक्ति से विस्तारित किया है।

ह = महादेव शिव तत्व

उद्धारक्रमानुसार भुवनेश्वरी महाविद्या का मूल बीज माया-बीज है। इसमें व्यञ्जन-स्वरूप शिवतत्व है, जिसके अन्तर पञ्चकृत्य अधिष्ठित हैं। भुवनेश्वरी महाविद्या के वही हकारात्मक परशिवांश सृष्टि के विकास में सर्वप्रधान हैं।

स = सदाशिव तत्व

इस तत्व के विषय में तन्त्र-वाक्य है—

ततः सदाशिवो जातस्तत्कृपा-लेशतः शिवे ।
ततः सा परमेशानि सौन्दर्य-गुण-संयुता ॥

(शक्तिसङ्गम)

इस सदाशिव-तत्वान्तर्गत अनुग्रह-रूपात्मक सूक्ष्म अहङ्कार-मल की स्थिति है। वास्तव में जैसा देवीभागवत में कहा है—

सगुणा, निर्गुणा चाहं समये शङ्करोत्तमा ।
सदाहं कारणं शम्भोः न च कार्यं कदाचन ॥
सगुणा कारणत्वाद्वै निर्गुणा पुरुषान्तिके ।

शक्तितत्व ही सदाशिव-तत्व में 'अहं' रूप से ज्ञान करा देने के कारण इनका कार्य अनुग्रह है । जीवों की मोक्ष-प्राप्ति की योजना में सहायता ही इनका अनुग्रह है । विश्व को 'अहं' रूप में देखना ही सूक्ष्म अहंकृति है । सदाशिव तत्व तक शक्तितत्व प्राय: एकत्व-युक्त प्रकाशमान है, पर सद्विद्या तत्व द्वारा 'अहं' 'इदं' में परिणत हो शक्तितत्व संकुचित होकर विभाजित हो जाता है । यथा—शिव-शक्ति-विभागेन जायते सृष्टि-कल्पना ।

ष = ईश्वरतत्व

पञ्चैश्वर्यों की अनुभूति अर्थात् स्वातन्त्र्य, नित्यत्व, सर्वकर्तृत्व, सर्वतृप्तित्व, सर्वज्ञत्व के द्वारा विश्व को 'इदं' के रूप में देखना ही ईश्वर के पञ्चैश्वर्यों का बोधक है । संसार के जीवों का मोक्ष-मार्ग में निरोध करना तथा जगत् का नियन्त्रण-रूप यह तत्व निष्कञ्चुक शिव है ।

श = सद्विद्या तत्व

सदाशिव तथा ईश्वर में विभिन्नता की प्रतीति करानेवाला वह सद्विद्या-तत्व भुवनेश्वरी की क्रियाशक्ति का अंश है । सृष्टि

को विस्तृत करने में सदाशिव-ज्ञान 'अहं' को 'इदं' में परिणत कर उसे ईश्वर तत्व में प्रतिष्ठित करता है।

ये पाँच तत्व शुद्ध प्रकाश तत्व हैं और यही सद्विद्या तत्व माया तत्व में परिणत हो ईश्वर तत्व को आक्रमण द्वारा पञ्चैश्वर्यों के हरण-पूर्वक पञ्चकञ्चुकों से मुक्त कर देता है। इस अध्यारोपण करनेवाले तत्व का नाम माया तत्व है।

व = माया तत्व

गन्धर्व तन्त्र में वर्णित है—

माया विभेद-बुद्धिर्निजांश - जातेषु निखिल-जीवेषु।
नित्यं तस्य निरंकुश-विभवं वेलेव वारिधेः रुन्धे॥

उपर्युक्त श्लोक के वर्णनानुसार समुद्र-तरङ्गों का अपार समूह थाह-रहित है, पर तट से रुका हुआ है। इसी प्रकार जीवों में अपार भेदबुद्धि डालनेवाला मायातत्व ईश्वर तत्व में सद्विद्या रूप होने से अभेद-सूचक हो जाता है। इस प्रकार सद्विद्या-तत्व ही बदल कर माया-तत्व हो गया। जैसा सप्तशती में वर्णन है—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥

अर्थात् महामाया की माया ही ईश्वर तत्व को बलपूर्वक ५ कञ्चुकों द्वारा जीव-तत्व में परिणत (बदलती) करती है। यह कार्य पञ्चकञ्चुकों द्वारा हुआ। यथा—

कञ्चुकितः शिवो जीवः निष्कञ्चुकः परः शिवः।

(आगमतोषिणी)

पुनश्च—

माया-ग्रहीत सङ्कोचश्शिवः पुंस्तत्व उच्यते।
अयमेव हि संसारे जीवो भोक्तेति दृश्यते॥

ज्ञत्व-कर्तृत्व-पूर्णत्व - नित्यत्वाद्याश्च शक्तयः।
तत्सङ्कोचात्सङ्कुचिताः कला विद्यादिकाः स्थिताः॥

(गन्धर्वतन्त्र)

ल = कलातत्व

पूर्णत्व के विपरीत अल्प-कर्तृत्व- शक्ति कला कही गई। यथा—

अयं मायात्मनः कला किञ्चित्कर्तृत्व-लक्षणम्।

(गन्धर्वतन्त्र)

र = अविद्या तत्व

ईश्वर तत्व में पूर्ण-रूपेण ज्ञान था। माया द्वारा उसका अपहरण होकर किञ्चित् ही ज्ञान रहा। यथा—'विद्या किञ्चिद् ज्ञता-हेतुः।'

य = राग

तीसरा कञ्चुक राग है, जो निर्लेप ईश्वर तत्व की विषयों में प्रीति उत्पादन करता है। यथा—'रागोऽभिष्वङ्गकारणः।'

(गन्धर्वतन्त्र)

म = काल तत्व

ईश्वर तत्व में अमरत्व था, पर माया द्वारा काल-रूप कञ्चुक से जीव मृत्यु को प्राप्त होता है। यथा—'कालः परिच्छेदकः।'

(गन्धर्वतन्त्र)

भ = नियति तत्व

यह पञ्चम कञ्चुक है अर्थात् शुभाशुभ कर्मों का भोग, जो कि माया तत्व की शक्ति द्वारा नियमित होता है।

उपर्युक्त पञ्च तत्व-रूप कञ्चुकों द्वारा माया ईश्वर तत्व को स्वप्नावस्था-युक्त सूक्ष्म देहरूप तैजस्-साक्षी पुरुष तत्वाभिमानी विद्या-तत्वात्मक रूप पुरुषतत्व में परिणत कर देती है।

ब = पुरुष तत्व

यह पुरुष तत्व चिद्रूप है। मूलतः महाशक्ति द्वारा काल्पनिक शिव चौदह विमर्शमय तुरीय तत्वों में अधिष्ठित हुए थे। शिव-तत्व में शक्ति-तत्व का आक्रमण होने से शिव-शक्त्यात्मक सदा-शिव तत्व बना, जिसमें पूर्ण अहन्ताभाव था। सद्विद्याजनित आक्रमण से 'अहं-इदं' में भिन्नता आई और इदन्ता-युक्त ईश्वर तत्व बना। माया-तत्व के आक्रमण से अपने ऐश्वर्यों को खोकर पञ्च कञ्चुकों द्वारा ग्रसित ईश्वर-तत्व ही पुरुष-तत्व में परिणत हुआ।

ल = मन, फ = बुद्धि, प = अहङ्कार

पूर्वोक्त माया तत्व ही प्रकृति तत्व में परिणत हो साक्षी-रूप पुरुष पर अपने अंश-त्रय सत-रज-तम गुणों से अर्थात् मन-बुद्धि अहङ्कार द्वारा आक्रमित होकर जीवत्व को प्राप्त हुआ। यथा—

अविद्यायां यत्किञ्चित् प्रतिबिम्बं नगाधिप।
तदेव जीव-संज्ञः स्यात् सर्वदुःख-समाश्रयः॥

(देवी भागवत)

इन चौबीस सांख्य तत्वों के विषय में सप्तशती के तृतीय चरित्र में वर्णित चतुर्विंशति दलाधिष्ठात्री शक्तियाँ स्मरणीय हैं। यथा— विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, मातृ, भ्रान्ति अर्थात् 'अन्तःकरण-वृत्ति-त्रयं गुण-साम्यम्—ल् = मनः, फ = बुद्धिः,

प=अहंकार' ये तीन मिलकर प्रकृतितत्व बनते हैं। निश्चयात्मक ज्ञान बुद्धि कहलाता है। अहङ्कार तथा ममता के कारण अहङ्कार तत्व कहलाता है। सङ्कल्प-विकल्पात्मक ज्ञान मनस्तत्व है।

न ध द थ त = श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण

घ्राण (त), रसना (थ), चक्षु (द), त्वक् (ध) और श्रोत्र (न)—ये पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ तत्त्र-स्वरूप हैं। अन्तःकरण से परिणत शक्ति-तत्व शब्द-ज्ञान का साधन होने से श्रोत्र-तत्व कहलाता है। स्पर्श का ज्ञान होने से त्वक् तत्व तथा रूप का ज्ञान होने से नेत्र-तत्व, रस का ज्ञान होने से जिह्वा एवं गन्ध का ज्ञान होने के कारण घ्राण-तत्व है।

ण ढ ड ठ ट = वाक्, पाणि, पाद, पायूपस्थ

शक्ति-द्वारा उच्चारण-क्रिया का साधन होने से वाग् तत्व, दान-आदान का साधन पाणि-तत्व, गमनागमन-साधन पाद-तत्व, मल-त्याग का साधन पायु-तत्व एवं मूत्रादि-निसर्ग का साधन उपस्थ तत्व—ये पञ्च कर्मेन्द्रिय हैं। ये तेरह तत्व इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्ति-प्रधान हैं तथा ज्ञानेन्द्रियों के क्रम से पञ्चतन्मात्रा-तत्व सूक्ष्म पञ्चमहाभूत रूप हैं।

ञ-झ-ज-छ-च = शब्दतत्व, स्पर्शतत्व, रूपतत्व, रसतत्व और गन्धतत्व

शक्ति-पञ्चतत्वों के सूक्ष्म रूप पञ्चतन्मात्रा कहलाते हैं। ये महाभूतों के बीज-स्वरूप हैं।

ङ घ ग ख क = आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी

पूर्वोक्त सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राओं द्वारा स्थूल पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है और यह दृश्यमान स्थूल प्रपञ्चरूप प्रतीत हो

रहा है। इसी में स्थूल पिण्डाण्ड बनता है। यही अशुद्ध तत्व कहे जाते हैं।

इन इक्यावन वर्णों से ये समग्र तत्व बने। इन वर्णों की उत्पत्ति शक्तिनाद द्वारा होती है। यथा—

'नादः सर्ववर्णोत्पत्ति-हेतुर्वर्णाः'।

इस नाद द्वारा ही परा-पश्यन्ति-मध्यमा-वैखरी ये चार वाक् है। इनको तन्त्र में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका संज्ञा दी गई है। जैसे परा वाक् अम्बिका, इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शक्तिक्रम से पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी रूप कही जाती है। नाद-तत्व से श्वेत बिन्दु (चन्द्र) तथा रक्तबिन्दु (अग्नि) व्यक्त होते हैं। श्वेत में रक्त मिश्र होने से मिश्र-बिन्दु बना। इन त्रिबिन्दु के लिये कामकला विलास में कथित है—

वागर्थौ नित्य-युतौ परस्परं शिव-शक्तिमयौ एतौ।
सृष्टि-स्थिति-लय-भेदौ त्रिधा विभक्तौ त्रिबीज-रूपेण॥

अर्थात् शब्द और अर्थ शिवशक्तिमय नित्य-सम्बन्धयुक्त हैं। शिव-रूप आधार पर ही शक्ति का क्रियात्मक रूप विश्व है।

शब्द, वर्ण और मन्त्र ये तीन शब्दाध्व कहे जाते हैं। इन तीनों का आविर्भाव नाद से है। कला, तत्व और भुवन ये तीन अर्थाध्व कहे जाते हैं। शब्दाध्व के वर्ण पद और मन्त्र के अनन्त प्रकार हैं। अर्थाध्व में भी कला, भुवन और तत्व के प्रकार भी अनेक हैं। कला पाँच प्रकार की है। यथा—निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता। तत्व वर्णमय ५१ हैं। भुवन २२४ हैं, जिनका सम्बन्ध तत्वों से है।

एवं प्रकारेण ईश्वरतत्व जीवतत्व में परिणत हुआ। आगमानुसार प्रतिबिम्ब-रूप मानसिक शिव पर पाँच आक्रमण

ही सृष्टिमूलक हैं। प्रथम तुरीयातीत महाशक्ति का छायात्मक शिवतत्व-निर्माण, द्वितीय शक्ति के तुरीय रूप में परमशिव एवं सदाशिव का उद्भव, तृतीय सद्विद्या द्वारा सदाशिव की ईश्वर तत्व में परिणति, चतुर्थ सद्विद्या का मायात्मक रूप से ईश्वर-तत्व को पञ्चकंचुकाभिभूत पुरुषतत्व में स्थित करना, पञ्चम मायातत्व का प्रकृति-रूप से पुरुष-तत्व को तेईस सांख्य तत्वों द्वारा जीव-रूप में परिणत करना। यह जीव नित्य अपने पञ्चैश्वर्यों को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहता है और वह उसका सर्वोत्तम उद्यम तथा अधिकार है। एकपञ्चाशन्मातृका-रूप कुण्डलिनी के विभिन्न वलयों से ५१ तत्व समष्टि तथा व्यष्टि-रूप सृष्टि-रचना करते हैं। प्रथम तुरीयातीत तत्व महाशक्ति 'आद्या' हैं तथा गुरु शरीराश्रय-रूप पन्द्रह तुरीय नाथ-तत्व, कारण शरीराश्रय पाँच शुद्ध शिवतत्व, सूक्ष्म शरीराश्रय में सात विद्यातत्व तथा स्थूल शरीराश्रय में २४ तत्व यह—आत्मतत्व कहलाता है। कामधेनु तन्त्र का कथन है—

'पञ्चाशद्वर्ण-सङ्केतं पञ्चाशत्तत्वमुत्तमं'

पुनश्च—'मातृका परमेशानी काली साक्षात् न संशयः' ॥

(कामधेनु तन्त्र)

तन्त्राभिधानान्तर्गत मन्त्राभिधान आदि कोषों में वर्णों से उपरोक्त वर्णित तत्वों का स्पष्ट बोध होता है। देवी भागवत में वर्णन है कि—

दक्ष-शापात् भृगोः शापात् दधीचस्य च शापतः ।
दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेद-मार्ग-बहिष्कृता ॥

उस पर भी देवी भागवतानुसार गौतम ऋषि का (गायत्री-प्रकरण ११ खण्ड) शाप पतित हुआ। अतः परिणाम में 'मारग सो जो जेहि भावा'। नाना प्रकार अर्थ खींच-तान कर भाष्यार्थों आदि द्वारा अनेक नवीन सम्प्रदाय बने।

रहा है। इसी में स्थूल पिण्डाण्ड बनता है। यही अशुद्ध तत्व कहे जाते हैं।

इन इक्यावन वर्णों से ये समग्र तत्व बने। इन वर्णों की उत्पत्ति शक्तिनाद द्वारा होती है। यथा—

'नादः सर्ववर्णोत्पत्ति-हेतुर्वर्णः'।

इस नाद द्वारा ही परा-पश्यन्ति-मध्यमा-वैखरी ये चार वाक् हैं। इनको तन्त्र में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका संज्ञा दी गई है। जैसे परा वाक् अम्बिका, इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शक्तिक्रम से पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी रूप कही जाती है। नाद-तत्व से श्वेत विन्दु (चन्द्र) तथा रक्तविन्दु (अग्नि) व्यक्त होते हैं। श्वेत में रक्त मिश्र होने से मिश्र-विन्दु बना। इन त्रिविन्दु के लिये कामकला विलास में कथित है—

वागर्थौ नित्य-युतौ परस्परं शिव-शक्तिमयौ एतौ।
सृष्टि-स्थिति-लय-भेदौ त्रिधा विभक्तौ त्रिवीज-रूपेण ॥

अर्थात् शब्द और अर्थ शिवशक्तिमय नित्य-सम्बन्धयुक्त हैं। शिव-रूप आधार पर ही शक्ति का क्रियात्मक रूप विश्व है।

शब्द, वर्ण और मन्त्र से तीन शब्दाध्व कहे जाते हैं। इन तीनों का आविर्भाव नाद से है। कला, तत्व और भुवन ये तीन अर्थाध्व कहे जाते हैं। शब्दाध्व के वर्ण पद और मन्त्र के अनन्त प्रकार हैं। अर्थाध्व में भी कला, भुवन और तत्व के प्रकार भी अनेक हैं। कला पाँच प्रकार की है। यथा—निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता। तत्व वर्णमय ५१ हैं। भुवन २२४ हैं, जिनका सम्बन्ध तत्वों से है।

एवं प्रकारेण ईश्वरतत्व जीवतत्व में परिणत हुआ। आगमानुसार प्रतिबिम्ब-रूप मानसिक शिव पर पाँच आक्रमण

वाल्मीकि-अवतार गोस्वामी तुलसीदास ने शिवाज्ञानुसार संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने पर भी शावर मन्त्र रूप हिन्दी में आगमोक्त शैली (शिव-गिरिजा-संवाद) में सीता, गिरिजा की अपूर्व वन्दना-पूर्वक अधिकांश अशिक्षित भारतीय जनता के समक्ष आगम-निगमादि-मथित मानस द्वारा धर्म का वास्तविक स्वरूप सर्वप्रथम उपस्थित किया। यदि संस्कृत में लिखा होता, तो अगणित अन्य रामायणों की भाँति लुप्त हो जाता।

घोर यवन-शासनकाल में सर्वत्र अमेध्य आहार था, अतः प्रचलित मेध्य आहार-प्रसंगों यथा वाल्मीकि रामायण के बाल-काण्ड का अश्वमेध ३५० बलि पशु जिसमें प्रयुक्त थे, वन जाते समय सीता को आहार-शिक्षा, सीता की गङ्गा-प्रार्थना, भरद्वाज का भरत-आतिथ्य, राम द्वारा पर्णकुटी में रौद्र विष्णु-पूजा, कबन्ध का पम्पासर-वर्णन, उत्तरकाण्ड का अशोकवाटिका-विहार आदि आदि पर यवनिका-रूप आवरण डाल केवल चार स्थानों में प्रायः मौन वर्णन मानस में है। यथा—विप्र-भोजन, मृगया (बालकाण्ड)तथा केवट निषादराज की भरत को जलचर, भूचर, खेचर-युक्त फलादि की भेंट, जो 'मौनं स्वीकार-लक्षणम्' के अनुसार अस्वीकार न की गई। यह अवतरण स्वाभाविक ही था, समय का प्रभाव ही ऐसा था।

हिन्दू जनता अपने धर्म के प्रथम ही स्पष्ट परिचय से बड़ी प्रभावित हुई—शक्तिशाली राम आततायी धर्म-विरोधियों का संहार कर रहे हैं। हिन्दू जनता इतनी प्रभावित हुई कि चार दिशाओं में चार—समर्थ स्वामी रामदास शिष्य श्री भवानी-सेवक छत्रपति शिवाजी, प्राणनाथ प्रभु शिष्य श्री विन्ध्यवासिनी सेवक महाराज छत्रसाल, काली-सेवक राणा राजसिंह (चित्तौड़) तथा काली-सेवक गुरु गोविन्दसिंह, जिनके संकेत-पञ्चककार तथा

'सत श्री अकाल' ही स्पष्ट कर देते हैं। जैसा कहा है—'बहुकाल तपस्या हम साधी, महाकाल कालिका आराधी।' उनकी शिष्य-परम्परा अर्थात् सिक्ख महाराज रणजीतसिंह ने भारतोत्तर-विजय-उपलक्ष में श्री ज्वालामुखी मन्दिर स्वर्ण-मण्डित किया। इस प्रकार हिन्दी-हिन्दू उपकृत हुए। सिद्ध महाराज रामकृष्ण ने आंग्ल (ईसाई) प्रभाव रोककर धर्म-रक्षा की। जब जब आगम तथा शक्ति-अपमान हुआ, तभी संकट आते रहे। यथा—

अहं हि जगतां धात्री जननी जन्म-कारणात्।
पाप-सम्भवमापन्ना नारी सर्वमयी हि सा॥
अहं च रोष-सम्पन्ना नाशयामि तमीश्वर।
प्रार्थनामपि कुर्वाणो न लभेदन्न-मुष्टिकम्॥

(शक्ति सङ्गम)

रामायण का वर्णन है—राम द्वारा दशानन-वध-वर्णन में सीता का समुचित आदर न होने पर जब पुष्कर द्वीप-निवासी सहस्र-शिर रावण ने एक ही बाण से राम की सारी सेना छिन्न-भिन्न कर रथ ही में राम को मूर्च्छित कर दिया, तब क्रोधित हो शक्ति चण्डी-रूप में सीता ने उसका बध कर हजार मुण्डों की माला धारण की। चेतना होने पर भयभीत राम उनके चरणों पर गिरकर निम्न प्रकार प्रार्थना करते हैं—

प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चापि विह्वलः।
भीतः कृताञ्जलि-पुटः प्रोवाच परमेश्वरीम्॥

आदि आदि। साधन-प्रदीप का कथन है—

विद्या-बलेन यः कश्चिदागमार्थं विचारयेत्।
परान् दिशति धर्मार्थं स पतेन्नरके ध्रुवम्॥

केवल विद्या-बल से उद्भूत अनेकार्थ अधोगति का कारण है। सिद्धान्त के पूर्ण प्रतिपालन बिना अव्यवस्था अवश्य होती है, जिस प्रकार नदी कच्चे कूल तोड़ती रहती है। श्री पूज्य शिवकुमार शास्त्री जी ने सर जॉन उड्रफ को आगम सिद्धान्तानुकूल ही दीक्षित किया। फल हुआ कि अनेक शास्त्र-ग्रन्थ रक्षित हो गये। इसी प्रकार आगमोक्त प्रचार से ही भारत की पूर्णरूपेण रक्षा कर उसे भ्रातृ-सूत्र में ग्रथित कर आगमोक्त प्रयोग-परीक्षणों द्वारा महान् लौकिक उन्नति तथा मोक्ष— उभय संग्रह हो सकते हैं।

उद्धार- विषय में आगम कथन है कि 'गुरुरुपायः'। गुरु की पृष्ठभूमि शास्त्र है। शास्त्र का वर्णन है—

उपाया बहुधा सन्ति ज्ञातुं ब्रह्म सनातनम्।
तथापि प्रकृतेः योगात् क्षिप्रं प्रत्यक्षतां व्रजेत् ॥

(हंस पारमेश्वर)

प्रकृति द्वारा जनित आणव मल (अणु = अज्ञान) अपूर्णत्व रूप अज्ञानाभास है। देह को आत्म-भास देनेवाला देहाभास तथा पृथकत्व-बोध मायाभास-रूप मायोपाधि है। स्थूलत्व की ओर विकास-शील शिव-तत्व ही कर्म-रत है। इस विकाश-धर्मी शिवतत्व का शक्तिपात-रूप दीक्षा द्वारा शान्त हो पूर्ण शव होना ही परम मोक्ष है। यथा—

दीक्षाग्नि-कर्म-दग्धासौ मायाद्विच्छिन्न बन्धनैः।
गतस्तस्य कर्म-बन्धः निर्जीवस्तु शिवो भवेत् ॥

(कुलार्णव)

दीक्षा, क्रमदीक्षा, पूर्णाभिषेक के प्राप्त होने पर साधन का अधिकार प्राप्त होता है। न्यास, कवचादि से शरीर वज्रवत्

तथा मन्त्र-पुरश्चरणों से पूर्णतया पापादि-विहीन हो दर्शनों (देव) की योग्यता सम्पादन करता है। वीर-साधन ही सिद्धि, कुण्डलिनी बोधन तथा प्रत्यक्ष दर्शनों के आधार हैं। यथा—

'भोग-मोक्षौ करे तस्य शवेन्द्रस्यापि साधनात् ॥'

(रुद्रयामल)

वास्तव में तत्व एक ही है, जिसके लिये कहा गया है—

'कीटात् ब्रह्म-पर्य्यन्तं सर्वं काली-मयं जगत् ।'

(दक्षिणा सर्वस्व)

पुनश्च—

सत्त्वं रजस्तम इति ब्रह्म-विष्णु-शिवादयः ।
ये चान्ये बहवो भूताः सर्वे प्रकृति-सम्भवाः ॥
सैव देवी महाशक्तिः श्यामा दक्षिण-कालिका ।
सैव प्रसूयते विश्वं सैव विश्वं प्रयाति च ॥
सैव संहरते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।
सर्वे भेदाः कालिकायाः स एवाद्या प्रकीर्तिताः ॥

(तन्त्र चिन्तामणि)

शक्ति-मन्त्र-महावाक्यों में निहित शाक्तदर्शन तन्त्र-वर्णित सृष्टि-क्रमानुसार देना पड़ा। पग पग पर समर्थन-प्राप्त उद्धरण अधिकाधिक देने पड़े। आशा है, विद्वज्जन त्रुटियों तथा विस्ताराधिक्य के लिये क्षमा करेंगे। कल्याण-मार्ग केवल निम्न है—

पूज्याऽहं सर्वदा सेव्या
युष्माभिः सर्वदैव हि ।
नातः परतरं किञ्चित्
कल्याणायोपदिश्यते ॥

(देवी भागवत ७।२८)

इति शम्

परिशिष्ट

एक-पञ्चाशत् तत्वों का संक्षिप्त विवरण

पञ्चाशद्वर्ण-सङ्केतं पञ्चाशत्तत्वरुत्तमं ।
मातृका परमेशानि काली साक्षान्न संशयम् ॥

(कामधेनु)

१ 'अः' —काली

काल-सम्रसनात् काली सर्वेषामादिरूपिणी ।
पुनः स्वरूपमासाद्य तमोरूप-निराकृतिः ॥
शव-रूप-महाकाल-हृदयोपरि संस्थिताम् ।
सप्त-प्रेत-पर्यङ्क - राजित - शवहृच्छिवा ॥
विशुद्धा परा चिन्मयी स्वप्रकाशामृतानन्दरूपा ।
जगद्व्यापिका च महाघोर-कालानल-जाल-ज्वाला ॥

(सुधाधारा)

तम आसीत्तमसा गूलूहमग्रे—(ऋ०७।१२६।३)
कालाग्निरसमूर्ध्वगः (जाबालोपनिषद्)
ज्योतिरूपा पराकारा तस्या देहोद्भवाः शिवे ।
तेषां अनन्त-कोटीनां महेश्वरी ॥

(भैरव यामल)

अन्तर विसर्ग शिव को पशुभावोन्मुखी बनाता है । शिव पूर्ण शब-स्थिति में है । शक्ति आद्या पूर्ण शुद्ध शक्ति-रूप है ।

२ अ—महाकाल शव

कलनात्सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः।

(महानिर्वाण तंत्र)

आद्या प्रतिबिम्ब—कोटि-कालानलाभासं (महाकाल संहिता)

कालः स ईयते प्रथमोनुदेवः ॥

सः ईयते परमो नु देवः ॥

(अथर्व सं. १६-६ + ५३.५४)

कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ।

काली माया समुद्भूतः काली मानसिक-शिवः॥

(शक्तिसंगम)

शिव की परम निष्क्रिय अवस्था शव है ।

३ आ—महोग्रतारा

सर्व-शून्यालयं कृत्वा तत्र चैकाकिनी स्थिता ।

प्रज्ञा पारमितेऽमित-चरिते ॥

नान्यत् किञ्चन मिसत । प्रज्ञा प्रतिष्ठा ।

(ऐतरेयोपनिषत्)

'सूर्या बृहन्ती मध्यूढस्तपति'।

(श्रुति)

अ+क्षोभ=सृष्टि (विचार)+रहित

निष्क्रिय शव केवल कुण्डलिनी-रूप से क्षोभरहित आभूषण-रूप मुकुट बना हुआ है। पर "सहस्रादित्य-सङ्काशम्" (सूर्यों के प्रकाश से युक्त) है।

४ इ—त्रिनेत्र-रूप महाकामकला

३६० कलात्मक किरणें

कोटिरर्बुदमेतेषां परा संख्या न विद्यते ।

प्रकाशयन्तः कालास्ते तस्मात् कालात्मकास्त्रयः॥

(भैरवयामल)

५ ई—श्री विद्या

कामकलेति विज्ञायते

(वह्वृचोपनिषद्)

आसीना विन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी ।

(कामकला-विलास)

विन्दुत्रयात्मकं स्वात्म-शृङ्गारं विद्धि सुन्दरम् ।
मिश्रं शुक्लञ्च रक्तञ्च पुराणं प्रणवात्मकं ॥

(रहस्याम्नाय)

हकारार्द्ध कला देवि ईकारः परिकीर्तितः ।

६ उ—कामेश्वर

निरुपाधिक-शिव कामेश्वर (भावनोपनिषद्)

शक्तश्च परमेशानि शक्त्या युक्तो भवेद् यदि ।
परमानन्दानुभवः परमगुरु निर्विशेष विन्द्वात्मा ॥

(कामकला-विलास)

विकासोन्मुखी शिव की पूर्णचेतना युक्त पर प्रपञ्चातीत अवस्था है ।

७ ऊ—नवनाथ

आधार-नवकमस्या नवचक्रत्वेन परिणतं येन ।
नवनाथ शक्त्योऽपि च मुद्रा-कारेण परिणताः ॥

(कामकला विलास)

नाथस्तत्त्वैश्च नित्याभिः कालनित्यान्त-विद्यया ।

(महाकाल संहिता)

तेनोक्तं सत्वतं तन्त्रं यद्ज्ञात्वा मुक्तिभाग् भवेत् (श्रीमद्भागवत्)

८ ऋ—षडाम्नाय शिवादि गुरु

काली तारा छिन्नमस्ता तथा कामकलापि च ।
श्री महा षोडशी चेति ऊर्ध्वाम्नायः प्रकीर्त्तितः ॥

(महाकाल संहिता)

पराप्रसाद-मन्त्रश्च श्रीविद्या षोडशाक्षरी।
कालिका दक्षिणा चैव मालिनी श्रीगुरोर्मनुः॥

चतुःषष्टिमहामन्त्रा ऊर्ध्वाम्नाये व्यवस्थिताः॥
(श्री विद्यार्णव)

९ ॠ—शाम्भव-षडन्वय

एतान् कुलगुरुन् ध्यायेदूर्ध्वाम्नाय उदीरितान्।
दशहस्ताः पञ्चमुखा मुण्डमाला-विभूषिताः॥
(श्रीविद्यार्णव)

चिन्तनीया प्रयत्नेन विद्यासंसिद्धि-हेतवे—

ओघ-त्रयः—(षट्कुजा युताः) क्रमणं पद-विक्षेपः क्रमोद-यस्तेन कथ्यते द्वेधा।

१० दिव्य ऌ

११ सिद्ध ॡ

आवरणं गुरुपङ्क्तिर्द्वयमिदमम्बा-पदाम्बुज-प्रारः॥
(कामकला विलास)

(१) गुरु-पंक्ति
(२) आवरण-विस्तार

तन्मिथुन-गुणभेदादास्ते बिन्दुत्रयात्मके त्र्यस्रे।

१२ ए—मानव

कामेशी–मित्रेश–प्रमुख–द्वन्द्व–त्रयात्मना विततम्॥
कामेश्वरी–कामेश्वर रूप—(१) मित्रेशनाथः कामेश्वरी, (२) उड्डीशनाथः वज्रेश्वरी, (३) षष्ठीशनाथः भगमालिनी।

वाक्, काम, शक्ति

वीज-त्रितयाधिपतीन् परीक्ष्य विद्यां प्रकाशयामास।
एतेरोध त्रितय समनुगृहीतं गुरुक्रमो गदितः॥
(कामकला विलास)

१३ ऐ—वाग्देवता (अष्ट)

नवयोन्यात्मक-प्रधान श्रीचक्रः। इति अष्टारः।
वसुकोण-निवासिन्या यास्ता सन्ध्यारुणा वशिन्याद्याः।
पुर्य्यष्टकमेवेदं चक्रतनोः सम्विदात्मनो देव्याः॥
(कामकला विलास)

चिति चित्तञ्च चेतनेन्द्रिय-कर्म्म च।
जीवः कला-शरीरञ्च सूक्ष्मं पुर्यष्टकं भवेत्॥ (स्वच्छन्द)
एतच्छक्ति-नवक-मयं नव-त्रिकोणं चक्रमिति।

१४ ओ—मातृका

पञ्चाशन्मातृका देवी नानाविद्यामयी सदा॥ (कामधेनु)
स्थूल-सूक्ष्म-विभेदेनत्रै लोक्योत्पत्ति-मातृका॥
'शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया'—(तन्त्र-सद्भाव)

१५ औ—छिन्न।

'विद्युदग्नि-समुद्भूतां प्रसुप्त-भुजगी-तनुम्॥ (ध्यान)
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।

वज्रा नाड़ी के अन्तर्गत प्राण के प्रवेश होते ही साधक का शरीर स्वर्णिम आभा से परिवर्तित हो अरुणिमा-युक्त आभा से सौन्दर्यमय हो प्रस्फुटित हो उठता है।

१६ अं—बगला

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तम्भितं येन नाकः
(य० वे० ३२—६)

अन्तर्वायुं सञ्चारं निरोधेत, योग–सिद्धो भविष्यति ।
निःश्वासोच्छ्वास–हीनश्च निश्चितं मुक्त एव सः ॥
(कुलार्णव)

प्रणष्ट–वायु–संचार पाषाण इव निश्चलः ।
मन × वायु—योगमूल

बगला मन्त्र का उचित प्रयोग होते ही साधक का शरीर स्वर्णिम केसरी रंग की आभा से प्रस्फुटित हो उठता है ।

१७ च—भुवनेश्वरी

प्रसाद-सुमुखीमम्बां मन्दस्मित-मुखाम्बुजाम् ।
अव्याज-करुणामूर्तिं ददृशुः पुरतः सुरा ॥
(देवी गीता)

शृङ्गार-रस-सम्पूर्णां सदा भक्तार्ति-कातराम् ।

१८ ह

शिवः हकारः स्थूलदेहं स्याद्—
(४२ देवी गीता)

महादेव शिव मल-रहित अर्थात् अणवादि मल-रहित गुरुभाव-युक्त उद्धार-क्रम से तन्त्रशास्त्र के प्रवर्त्तक हैं ।

१९ स

सदाशिवः अहन्तया पश्यन् । सूक्ष्मऽहंकार (मल) अनुग्रह निष्कञ्चुकः

इस सदाशिव तत्व में शक्ति भी प्रवेशित हैं ।

२० ष

ईश्वरः—जगदिदं तया पश्यन् । प्राकृत मल, निग्रह, पञ्चै-श्वर्य्ययुक्त

शक्तितत्व की भिन्नता से । यथा— (निष्कञ्चुक)

"शिव-शक्ति-विभागेन जायते सृष्टि-कल्पना ।"

२१ श

सद्विद्या तयोरभेदधीः

२२ व

माया—जगत् परम-शिवयोः भेद-बुद्धिः ।

२३-२७ ल र य म भ

अविद्या-कला-राग काल-नियति-ईश्वर गताः स्वतन्त्रता, नित्यता, नित्य-तृप्तता सर्वकर्तृता, सर्वज्ञतारव्या धर्मा एव सङ्कुचिताः सन्तो जीवे क्रमात्

२८ ब

पुरुषो—चित्तं । पञ्चकञ्चुक-युक्त, सूक्ष्म शरीर, स्वप्नावस्था ईश्वरतत्व मायातत्व द्वारा कञ्चुकित हो पुरुष तत्व में परिणत हो गया ।

स्थूलत्व शिव का विकास तथा शक्ति का संकोचत्व है ।

२९, ३०, ३१ फ प

प्रकृति—अहङ्कार बुद्धि मनांसि-अन्तःकरण वृत्तित्रयम् तमो रज सत (रज तमो रूपाणि)—आणव कार्मण, मायिक मल-त्रयं ।

आणव, कार्मण और मायिक मलों द्वारा विकासोन्मुख शिवतत्व को रुद्र, विष्णु एवं ब्रह्मा अर्थात् सत-रज-तमस् युक्त अहंकार बुद्धि मन तत्वों में परिणत करते हैं ।

३२-३६ न ध द थ त

श्रोत्र—त्वक्-चक्षु-रसना-घ्राण-ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च

३७-४१ ण ढ ड ठ ट

वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ—कर्मेन्द्रियाणि पञ्च

४२-४६ ञ झ ज छ च

शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध—तन्मात्राणि पञ्च
४७—५१ ङ घ ग ख क
आकाश-वायु-तेज-अप्—पृथ्वी भूतानि पञ्च
ईश्वर तत्व अन्त में जीव-संज्ञक अवस्था को प्राप्त हुआ।

उद्धार

'गुरुरुपायः'—गुरुरेकः।
'तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग।'

(देवीगीता)

शक्तिपात-रूप दीक्षा, क्रम, पूर्णाभिषेक-न्यास, कवचादिक-युक्त मूल-पुरश्चरण द्वारा अधिकार-प्राप्ति। तदनन्तर वीरादि-साधन-रूप कुण्डलिनी योग।

शास्त्र

कर्णात् कर्णोपदेशेन सम्प्राप्तमवनी-तलम्

(वामकेश्वर)

गुरु-शिष्य-पदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः।
प्रश्नोत्तर-पदैर्वाक्यैतन्त्रं समवतारयत्॥
'तन्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्'।

(स्वच्छन्द तंत्र)

नाना तंत्र-विधानेन कलावपि यथा शृणु।
विधिनाप्रचरेत् देवं तन्त्रोक्तेन केवलम्॥

(श्री मद् भागवत)

आचार

वाराह-पुराणे यथा—भगवानुवाच
'मार्गमांसं तथा छागं शाशं समनुयुज्यते।
एतानि मे प्रियाणि स्युः प्रयोज्यानि वसुन्धरे॥

वैदिकी तांत्रिकी मिश्र इति मे त्रिविधाः मखाः
(श्री मद्भगवद् गीता)

बाह्यभाव

जननीं यः समाश्रितः अपि वर्ष-शतस्यान्ते स द्विहायन-वच्चरेत् ॥
(शान्तिपर्व महाभारत)

दुर्गा-स्मरण-मात्रेण सर्व-विद्या - स्मरणं ॥
श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि य कश्चित् मानवः स्मरेत् ।
दुर्ग-दुर्गशति जित्वा सःयाति परमां गतिम् ॥

अन्तर्भाव—आत्मैव त्रिपुरसुन्दरी
इमानुकभुवना सीषधम्—अरुणोपनिषद
तैत्तरीय आ०
१ प्रपाठक ।

अर्थात् श्री चक्रविद्या के आश्रय में ही लोक अवस्थित है । ब्रह्माण्ड का ही चित्र-रूप पिण्डाण्ड है । तत्वों के पञ्च-विभाग निम्न हैं—

(१) सर्वाद्य तत्व तुर्यातीत आद्या १ हैं ··· तत्वशुद्धि—मूल और पादुका
(२) नाथ तत्व तुरीय १५ हैं ··················· चतुर्थ महावाक्य
(३) शिव तत्व कारण शरीराश्रय में ५ हैं ······· प्रथम महावाक्य
(४) विद्या तत्व सूक्ष्म शरीराश्रय में ७ हैं ······ द्वितीय महावाक्य
(५) आत्मतत्व स्थूल शरीराश्रय में २३ हैं ······· तृतीय महावाक्य
५१

सर्वोच्च साधन

याम-मात्रेण संसिद्धिः वीर-साधन-योगतः ।
(महाकाल संहिता)

❁ ❁ ❁ ❁

चण्डी

मन्त्र, तन्त्र एवम् शक्ति-उपासना पर प्रामाणिक रूप से प्रकाश डालनेवाली एकमात्र सचित्र मासिक पत्रिका। आज ही सदस्य बनकर लाभ उठावें।